∴ विषय-सूची ∴

भारत पुत्री	१
वीरांगना वीरा	१०
अजीतसिंह जोधपुराधीश	२४
लगन का फल	३३
सम्राट मिकाडो	४१
तानसेन	५०
मूर्ख मण्डली	५६
स्वामी भक्त पन्ना	७३
योगी और भक्तराज	८४
केवल आन के लिये	९६
सत्याग्रही आर्य बालक	११३
रानी सारन्धा	१२६

एकांकी की ओर।

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' के अनुसार सचमुच नाटक को आचार्यों ने बहुत महत्त्व दिया है। बात भी यही है। काव्य का जितना उद्देश्य नाटक द्वारा पूर्ण होता है उतना किसी अन्य प्रकार से नहीं। नाटक दृश्य काव्य है। दृश्य-काव्य का प्रभाव आँखों द्वारा हृदय पर प्रत्यक्ष रूप में पड़ता है। मस्तिष्क और मन एकाकार होकर दृश्य के साथ तदाकारता ग्रहण कर लेते हैं। इसमें होता यह है कि मन और मस्तिष्क को विम्ब-ग्रहण करके रसास्वादन करने मात्र का कार्य करना पड़ता है, विम्बनिर्माण-में इनकी शक्ति का अपव्यय नहीं होता। परन्तु, श्रव्य-काव्यों में मन और मस्तिष्क को विम्ब-निर्माण में भी शक्ति का–व्यय करना पड़ता है, और यही कारण है कि रसास्वादन की तल्लीनता या एकचित्तता में विक्षेप पड़ जाता है। अतः मनोविचार को प्रकट करने की सर्व श्रेष्ठ काव्यशैली का नाम ही नाटक है, यह कह देना अनुचित नहीं।

काव्य के जितने भी प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं सभी एक प्रकार से विचार को प्रभावोत्पादक बना कर प्रकट करने के सफल या असफल एवं अधूरे जो कुछ भी कहिए, उपाय या तरीके मात्र हैं।

छोटी कहानी, उपन्यास, चम्पू, नाटक, खंड काव्य, महाकाव्य निबन्ध आदि विचारों को सफलता पूर्वक प्रकट करने के समय समय पर खोजे हुऐ, साधन मात्र हैं। इन सब में नाटक का स्थान तथाकथित कारणों से सर्वोत्तम माना जाता है।

'नाटक' शब्द नट धातु से बना है। नृत्य और संगीत का इसमें प्राधान्य रहता है। वैसे तो नाटक में चित्रमयता, संगीत एवं काव्य तीनों ही उच्च कलाओं का सानुपातिक संमिश्रण रहता ही है, पर नृत्य और संगीत उसके प्रधान योजकतत्त्व माने गये हैं। नाटक की विवेचना किसी पुस्तक के अग्रलेख के रूप में पूरी करदी जाय यह असंभव है। इस विषय पर तो स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं, लिखे गए हैं, और लिखे जा भी रहे होंगे। पर यहाँ मुझे कुछ नाटक की अवान्तर शैलियों एवं उनके आधुनिक मूल्यांकन पर प्रकाश डालना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ एकांकी नाटकों का एक गुलदस्ता है इसमें मौलिक एकांकी नाटकों का गुच्छ है। हर एकांकी अपनी एक विशेषता रखता है। किसी का मूल्य सामाजिक दृष्टि से लगता है, तो किसी का ऐतिहासिक वीरोचित वृत्ति की दृष्टि से और किसी का नैतिक एवं हृदय-वृत्ति प्रदर्शन की दृष्टि से। एकांकी सभी उपयोगी एवं छात्रोपयोगी हैं। इतना ही नहीं, इन एकांकियों में छात्र एवं छात्राएँ दोनों के लिए समान रूप से हित कारी तत्त्व भी हैं। आजकल इस बात का ध्यान न रखकर जो नाटक केवल समस्या लेकर चलना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं मैं तो कहूँगी, वे नाटक लिखने के उद्देश्य-नाटक से मानव हृदय पर उद्भूत होने वाले प्रभाव से सर्वथा रिक्त होते हैं।

हाँ, कहना यह है कि एकांकी आखिर है क्या बला? एकांकी का इतिहास एकांकी नाम से तो अभी बहुत नयी पच्छिमी देन माना जाता है। किन्तु, उसके मूलतत्त्व हमारे संस्कृत साहित्य में उतने ही प्राचीन हैं जितना संसार के साहित्य में संस्कृत साहित्य के नाटक का इतिहास। हमारे उपरूपक भिन्न-भिन्न प्रकारके एकांकी ही तो हैं। बल्कि, मैं तो यह भी कहने का साहस करूंगी कि

वे ही एकांकी वास्तव में सच्चे एकांकी थे आधुनिक एकांकी तो नाम मात्र के एकांकी हैं। अङ्कों की दृष्टि से आज के एकांकी बहु अङ्की होते हुए भी कहलाते एकांकी ही हैं वास्तव में एकांकी में होनी चाहिए एक ही स्थल की एक ही घटना, और वह घटना इतनी संघटित हो कि तत्सम्बन्धित अन्य घटना-चक्र का उल्लेख न रहते हुए भी उसका कमी कथानक में खलती न रह जाय। यह सफल एकांकी की कसौटी है ! और इस घटना-चक्र की कमी को एकांकी में कथोपकथन द्वारा पूरी की जाती है। अतः कह सकते हैं एकांकी की जान उसके सुगठित संवाद एवं घटनाचक्र का एकांकी संयोजन ही है। इस दृष्टि से प्रस्तुत एकांकी बहुत अंशों में सफल हैं। कहीं कहीं दृश्य परिवर्तन अवश्य हो गया है, किन्तु कुशल आचार्य महोदय ने घटना-चक्र के एक-सूत्र की रक्षा कर दृश्य-पटी की भिन्नता को भी एकता का ही संकेतक बना दिया है, यह इस ग्रंथ की एक मौलिक विशेषता है ।

अब हमें यहाँ थोड़ा सा उन बातों पर भी विचार करना है जिनसे एकांकी की आलोचना करने में छात्रों को मार्ग निर्देश हो सके ।

एकांकी का स्थान साहित्य में वही है जो एक छोटी कहानी का। जिस प्रकार छोटी कहानी का सूत्र पात बड़े २ उपन्यासों से उकताकर हुआ है उसी प्रकार बड़े२ नाटकों को पढ़ने का आलस्य इस कार्य संकुल युग में एकांकी की जन्म कथा का मूल कारण है । इस प्रकार नाटकीय शैली में विचार प्रकट करने की संक्षिप्त शैली को ही एकांकी शैली कह सकते हैं । एकांकी शैली का आधुनिक रूप १६ वीं सदी की पश्चिमीय साहित्यक क्रान्ति का फल है। इस कारण यहाँ इस एकांकी की कसौटी भी आधुनिक शैली पर ही बनाई गई है।

किसी भी सफल एकांकी की आलोचना के लिऐ पाठक को निम्न चार बातों पर विचार करना चाहिए।

१—नाटक की कथा का एकाङ्गीपन

२—स्थल-सम्बन्ध

३—संवाद

और ४—वातावरण की परिपक्वता।

यहां पर वातावरण की परिपक्वता का तात्पर्य रस-परिपाक से ही है। प्राचीन आचार्य जिसे रसपरिपाक कहते हैं, नया जमाना पश्चिमीय प्रभाव से उसे ही वातावरण की परिपक्वता कहता है। एकांकी का एक२ शब्द और एक-एक वाक्य प्राणों की तरह आवश्यक है। घटना के प्रत्येक भाग का सम्बन्ध मानव शरीर के अङ्गावयव के समान है। इसमें कथावस्तु कौतुहलपूर्ण और स्पष्ट, तथा चार या पांच भागों में ही सीमित रहती है। एकांकी में वर्णनात्मक तत्त्वों की अपेक्षा अभिनयात्मक तत्त्व अधिक रहते हैं। साधारण और एकांकी नाटक का अन्तर निम्न तालिका से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है:—

साधारण नाटक में मानव जीवन की अनेक रूपता रहती है।	एकांकी में मानव जीवन की एक रूपता ही रहती है।
कथा का पूर्ण विस्तार एवं अनेक अंक और अनेक पात्र रहते हैं।	केवल आवश्यक अङ्गों का वर्णन, और अन्य अनावश्यक अङ्गों की उपेक्षा तथा एक अङ्क और सीमित पात्र।
(२)	(२)
कौतुहल की अनिश्चित स्थिति, और वर्णनात्मक तत्त्वों	चरित्र-चित्रण की सूक्ष्म रूप रेखा और तीव्रता तथा

का वाहुल्य, चरित्र चित्रण में अनेक प्रकार की भिन्नता तथा चरम सीमा का विस्तार।

(३)

सीमा का विस्तार एवं कथानक का घटना-क्रम के कारण मन्थर गति से प्रवाह।

प्रारम्भ में ही कौतूहल की अवस्था एवं भाव व्यञ्जना और प्रभाव शीलता का आधिक्य।

(३)

चरम सीमा का संक्षेप में केन्द्रीकरण, और घटना-न्यूनता के कारण कथानक की तीव्र गति।

अब अन्त में यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि इस उपयोगी एकांकी समुच्चय का आलोचनात्मक अग्र लेख लिखने का मुझे सौभाग्य प्रदान करने के अतिरिक्त आचार्य महोदय ने मुझे कदाचित् लेखन-क्षेत्र में अग्रसर होने का क्रियात्मक पाठ भी पढ़ाया है। मैंने जिनके चरण में बैठकर हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन किया है, वे कदाचित् खरी आलोचना के भावों को अनादर की दृष्टि से न देखेंगे। इस लेख में जहाँ कहीं उग्रता की गंध है वे सच्ची समालोचना के पोषक तत्त्व के रूप में ही ग्रहण की जायगी। प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता सदा सत्समालोचना के पक्षपाती रहते आये हैं, अतः आलोचना के खरे दृष्टिकोण को वे तथा पाठक सभी बुरा नहीं समझेंगे; मेरा अपना ऐसा दृढ विश्वास है।

इस ग्रन्थ के नाटकों में आदर्शवाद का प्रामुख्य आधुनिक युग-प्रवृत्ति के अनुसार कुछ अवांछनीय प्रतीत होता है। पर इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की कसौटी पर कसा जाने वाला साहित्य लोकहित को दृष्टि से ओझल नहीं कर सकता, और लोकहित की रक्षा के भाव में आदर्शवाद का पनपना कोई अस्वाभाविक बात नहीं। अस्तु, ग्रन्थ का आदर्शवाद युगवृत्ति के विरुद्ध होकर भी साहित्य का

एक स्थायी गुण होने से तिरस्करणीय नहीं। इन नाटकों की पर्यालोचना करने पर यही कहा जा सकता है कि इनके द्वारा देश के प्राचीन गौरव को, आन को, भक्ति भावना व राष्ट्रीय सम्मान को पुनः बालकों के समक्ष लाना, और अङ्गरेजी शिक्षा द्वारा जमे हुए कुसंस्कारों को कम करना ही नाटककार का उद्देश्य रहा है। नाटकों के कथानक सर्वप्रिय और सार्वजनिक ही लिए गये हैं। प्रत्येक नाटक के आरंभ में उसका आवश्यक ऐतिहासिक व सांस्कृतिक वृत्तसार देकर ग्रन्थ की उपयोगिता को और भी बढा दिया गया है। पांचोंके चरित्रोंकी आलोचना हम पाठकोंकी बुद्धि का विषय समझते हैं, इसी से इस विषय में कुछ न लिख कर अग्रलेख को स्वतंत्र ग्रन्थ बनाने से बचाने की चेष्टा की गई है।

प्राचीन महापुरुषों के चारित्रिक अनुकरण में, राष्ट्रोत्थान की भावनाओं को जागरण देने में, हम समझते हैं ये एकांकी अवश्य सफल होंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे देश के बालक बालिकायें, जिन पर राष्ट्र की स्वतन्त्रता का भार है, कल देश की शासन सत्ता का सूत्र जिनके हाथों आने वाला है, इनको पढकर इनके अनुसार आचरण भी करेंगे। पाठ्यग्रन्थों में इस प्रकार के नाटकीय लेख यदि समादृत होते रहे तो निकट भविष्य में नये भारत की आत्मा फिर से एकबार प्राचीन भारतीय आदर्शों से भारत वसुन्धरा को गौरवन्वित कर सकेगी।

कुसुम-निवास, जयपुर
मिति आषाढ़ कृ०
२ बुधवार संवत्
२००५ वि०

विनिता—
साहित्य वारिधि रामरति देवी 'कुसुम'
विशारद
आर० डी० एस०, बी० टी० सी०,
अध्यापिका
महिला विद्यापीठ, जयपुर।

भारत-पुत्री

पात्र परिचय

पुरुष

महाराजा भोज	...	...	प्रसिद्ध हिन्दू सम्राट्
कविवर कालीदास	...	...	संस्कृतके प्रसिद्ध कवि
शंकर शर्मा	..	...	एक संतोषी ब्राह्मण
सन्यासी	...	...	महाराजा भोज

स्त्री

शीला	...	...	सती, शङ्करशर्मा की भार्या

स्थान—उज्जयनी

कथा प्रसंग

महाराज भोज के अनुभव आजतक ही नहीं, आने वाले समय में भी अखिल विश्व को दिव्य संदेश देते रहेंगे, यह एक सिद्ध बात है। इस नाटक में भी उनके एक ऐसे ही अनुभव का चित्र है। इस नाटक में शङ्कर शर्मा की परमसुन्दरी और सति शिरोमणि धर्मदारा के उज्ज्वल चरित्र का वर्णन है। महाराज भोज ने कपट रूप धर कर किस तरह इस भारत पुत्री की परीक्षा ले कर इसके पार्तिव्रत की परीक्षा ली, किस तरह शङ्कर शर्मा की निर्लोभ वृत्ति अटल रही, और आखिर किस तरह महाराज भोज को आर्य बालाओं की अखण्ड पवित्रता का विश्वास हुआ, यही दिखलाना इस एकांकी का उद्देश्य है।

भारत पुत्री

पहला दृश्य

स्थान—महाराज भोज का एकान्त महल।

(महाराज अपने राजकवि कालिदासजी से मानव-चरित्र की संदिग्धावस्था पर विचार कर रहे हैं।)

महाराज—कविवर, मनुष्य एक पहेली है ! और उस में भी इस पहेली का औरत सम्बन्धी विभाग और भी उलझा हुआ है। क्यों, कालिदास, कोई ऐसी भी औरत है जिसकी कल्पना में भी पर पुरुष न आया हो ?

कालिदास—महाराज, इस पवित्र भारत देश में, दूसरे देशों की अपेक्षा, ऐसी स्त्रियाँ बहुत हैं जिन्हें अपना चरित्र और पातिव्रत ही सर्वस्व मालुम पड़ता है। आज भारत में घर २ सतियां हैं, और घर-घर यहाँ पातिव्रत की मधुर सुगन्ध से आप्लावित है।

महाराज—तो क्या कुलटाओं का अभाव है ?

कालिदास—सो बात नहीं है। कुलटाएँ भी हैं, किन्तु वे नहीं के बराबर हैं। उनका होना न होना समाज में कोई विशेष महत्व नहीं रखता।

पद

यह किसका है बोल, तनिक हृदय को खोल
अन्तस्तल में बोल रहा है, सब जग को वह तौल रहा है।
सत्य झूँठ के दो पलड़ों में, लगा मोल अनमोल
आगम, निवसन, निरसन जगका, कल्पित ढांचा मानव मनका।
आँख मींच मत डोल, तनिक हृदय को खोल।
मेला है यह सब पनघट का, दृश्य न स्थायी इस जमघट का।
चार घड़ी की रौल, तनिक हृदय को खोल।
जीने मरने का सब नाता, दुनियाँ का है शाश्वत ताँता।
यही ढोल की पोल, तनिक हृदय को खोल।

(अकबर और उसका वजीर सामने खड़े खड़े पद सुनते रहते हैं
पद खत्म होने के बाद)

अकबर—तानसेन, तुम्हारी तारीफ सुनकर मैं खुद यहाँ आया हूँ। मैं चाहता हूँ तुम मेरे यहाँ चलो।

तानसेन—बादशाह की ऐन महरबानी है-पर मेरे गुरु स्वामीजी की आज्ञा बिना मैं कुछ नहीं कर सकता। वे स्वयं ही पधार आये, आप बात करलें उनसे।

अकबर—स्वामी जी महाराज!

हरिदासजी—अहो सम्राट! आपने कैसे कृपा की?

सम्राट—भीख मांगने आया हूँ।

हरिदासजी—भीख! भिखारियों से भीख कैसी?

सम्राट—तानसेन की! मैं इसके पिता को जागीर देकर बड़ा आदमी बना दूँगा। और इसे स्वयं अपना दरबारी बना कर रुतबा दूँगा। क्या आप इसके भले के लिये इसे मेरे साथ जाने की इजाजत देंगे?

हरिदासजी—अवश्य! बेटा तानसेन जाओ। अपने कडे परिश्रम के मीठे फल चक्खो।

तानसेन—स्वामीजी महाराज यह सब आपकी कृपा है। परन्तु मैं श्री चरणों का विरह नहीं सह सकता।

स्वामी जी—हम तुम्हारे पास ही हैं। चिन्ता न करो। जाओ। तानसेन—संसार तुम्हारे नाम को याद रखेगा। संगीत तुमसे और तुम संगीत से अमर हो जाओगे। श्री राधारमण की सर्व प्रिय विद्या संगीत विद्या तुम्हें सिद्ध हो गई है-अब जाओ संसार को नाद ब्रह्म का अमर संदेश सुनाओ। राधारानी की कृपा से तुम्हारे गले में जादू होगा और तान में त्रिभुवन मोहिनी शक्ति! (सब का प्रस्थान)

———

महाराज—तो इसका अर्थ यह है कि भारत में सती शिरोमणियां अनेक हैं ?

कालिदास—कदाऽपि नहीं। सतियां बहुत हैं, सति शिरोमणि तो केवल एक ही है और वह आपही के राज में वर्तमान है।

महाराज—कौन ?

कालिदास—शङ्कर शर्माजी की स्त्री।

महाराज—वह कैसी होगी ?

कालिदास—सुनते हैं बड़ी सुन्दर है !

महाराज—तुमने देखी नहीं ?

कालिदास—उसे देखना असंभव है महाराज ! वह पर पुरुष से बात तो दर किनार उसकी साया ही नहीं पडने देती। वह इसी लिये तो घर से नहीं निकलती।

महाराज—कालिदास, मैं उसे किस तरह देख सकता हूं. कोई उपाय ?

कालिदास—महाराज दुर्लभ है।

महाराज—आखिर दुर्लभ को सुलभ कैसे किया जाय ? इसमें सन्देह नहीं वह सति शिरोमणि ही होगी, कविराज उसके दर्शन कैसे हों ?

कालिदास—महाराज, उसके पति शंकर निर्लोभी हैं, किसी से कभी कुछ मांगते नहीं—भला ऐसी हालत में कैसे वहां तक पहुँचा जाय। और उस सती को भी कोई लोभ नहीं। मगर फिर भी संभव है धन देख कर ब्राह्मण को लोभ हो जाय।

महाराज—तब यही उपाय किया जाय।

(दोनों का प्रस्थान)

दृश्य दूसरा

स्थान—शंकर शर्मा की टूटी झोंपड़ी का
भीतरी भाग

(शंकर शर्मा अपनी चारपाई पर पड़े हैं शीला उनके पांव दबा रही है।)

शङ्कर—प्राणेश्वरी ! महाराज ने बुलवाया है आज, सायंकाल।

शीला—क्यों नाथ ?

शङ्कर—कुछ पता नही चला।

शीला—प्राणनाथ, देखना कहीं अपने पवित्र मार्ग से न डिग जाना। आजतक आपने किसी के सामने हाथ नहीं पसारा। महाराज, यदि राजा द्रव्यदान दे तो लेना मत, द्रव्य से लोभ और मद बढता है और फिर मद न जाने क्या२ अनर्थ करवा देता है।

शङ्कर—देवी, सत्य है। यह टूटी झोंपड़ी और पुरानी खटिया, हम लोगों के प्रेम की अथाह लहरें, उमडते हुए हमारे मनों को गोलोक और साकेत का सा आनन्द देती हैं। हम लोग अपने प्रेम मय जीवन में एक राजा से कौन कम हैं!

शीला—राजा, राजा तो महाराज महादुःखी होता है। केवल वैभव ही सुख का लक्षण नहीं हो सकता। सुख ईश्वरीय देन है जब कि वैभव मनुष्य के खुद के हाथ की करामात है। मनुष्य अपने ही हाथ से वैभवशाली बन कर अपना ही बुरा कर लेता है।

शङ्कर—सती! फिक्र न करो, तुम्हारे इन शब्दों ने शङ्कर के कठोर मन को फौलाद की सख्ती देदी है—वह अब पिघलेगा नहीं। अच्छा, समय भी होने वाला है, जाऊँ राजा के पास, देखें।

(एक फटी पगडी सिर पर रख कर नंगे पांव चल पडता है।)

दृश्य तीसरा

स्थान—राजदरबार

(दरबारी गण बैठे हैं। कालिदास महाराज के सिंहासन के निकट दक्षिण पक्ष में बैठे मुस्करा रहे हैं।)

ब्राह्मण—(प्रवेश) आशीर्वाद राजन्!

राजा—(मयसभा के अभ्युत्थान देते हैं) नमस्कार ब्राह्मणदेव! आइये

ब्राह्मण—(चारों ओर देखकर बैठता हुआ) आज मुझ दीन ब्राह्मण पर कैसे कृपा हुई राजन् !

राजा—महाराज केवल दर्शनों की ही इच्छा थी।

(राजा के संकेत पर एक थाल मोहरों का भर कर ब्राह्मण के सामने लाया जाता है)

राजा—यह भेंट है महाराज, इसे स्वीकार कीजिये।

ब्राह्मण—(हँसकर) धन्यवाद ! परन्तु मैं इनका क्या करूंगा महाराज ?

राजा—(दूसरा थाल भी लाने का संकेत करता है)

ब्राह्मण—(आश्चर्य से देख कर) राजन् ! क्या मुझे एक थाल कम था यदि मैं लेता ! मेरे लिये यदि वह एक थाल एक बीमारी थी तो यह दूसरा दो। मैं गरीब हूँ मेरे लिये इतना सोना कष्टदायी है—यह तो राजाओं के पास रहने की वस्तु है। मुझे इसकी इच्छा नहीं-मेरा धन तो मेरा कर्म है। अच्छा और कहिये, क्या आज्ञा है ?

राजा—महाराज, क्षमा करना आपको श्रम हुआ।

ब्राह्मण—नहीं राजा, काहे का श्रम है। ब्राह्मण शरीर तो कष्ट और श्रम के ही लिये होता है।

(प्रस्थान)

राजा—(कालिदास से) अब ?

कालिदास—महाराज अब एक ही उपाय अवशिष्ट है। इनकी पत्नी सन्यासियों में विश्वास रखती है, यदि —

सन्यासी बन कर उसके द्वार पर जाइये तो संभव है दर्शन हो जांय ।

राजा—सन्यासी, वाह यह तो पूज्य वेष है, यदि मुझे इस काम के लिये बुरा वेष भी बनाना पडे तो स्वीकार है। चलो, यही साधन काम में लें (सोचकर) परन्तु, वह ब्राह्मण तो मुझे हर हालत में पहिचान ही लेगा।

कालिदास—एक काम कीजिए, शङ्कर शर्मा को बुला कर राज महल में जप करने की प्रार्थना कीजिये । जब तक वह यहां रहे, आप उधर पधारिये।

राजा—ठीक है। चलो— (प्रस्थान)

दृश्य चौथा

स्थान—शङ्कर शर्माकी झोंपड़ी

(शीला पाकशाला के टूटे छप्पर के पास बैठी २ काम करती २ गा रही है।)

धैर्य दुःख से मिलता है, और धीरज से मिलता अनुराग।
यही राग फिर भाग रूप में, बन जाता है अटल सुहाग॥
सहते जाओ बाधाएं सब—समय न रहता एक समान।
किन्तु समय को काटो सहकर,खुद न कटो रखो निज आन।
इसी को कहते जीवन राग। कि जिसमें रहता शुद्ध विराग॥

(सहसा एक आवाज आती है—
"भिक्षान्नं देहि")

शीला—(चौंक कर) महाराज, थोड़ी देर बाहर वाले वृक्ष के नीचे विश्राम कीजिये । अभी भोजन बना नहीं—अभी बना कर लाती हूँ ।

सन्यासी—मैं वृक्ष के नीचे वहां न बैठूंगा—मैं तो यहीं बैठूंगा।

शीला—(विचार पूर्वक भीतर से ही) अच्छा महाराज जैसी मरजी, यहीं बैठ जाइये । मैं अभी हाल लाती हूँ ।

दृश्य पांचवां

स्थान—राजमहल

(शंकर शर्मा आसन पर बैठे जप कर रहे हैं ।)

दृश्य छठा

स्थान—शङ्करकी झोंपड़ी

(शीला मकान में भोजन परोस कर लाती है । भोजन परोस कर आमों का रस निकालने लगती है ।)

शीला—अरे यह क्या यह खूब ही रसीले आम हैं पर रस क्यों नहीं निकलता है ? (सोचकर) आमों ! तुम रस से परिपूर्ण हो, पर रस क्यों नहीं छोड़ते ? मैंने तो आज तक पर पुरुष का ध्यान तक नहीं किया । बाल्यावस्था से आजतक पतिव्रता रही हूं फिर क्या कारण है ? क्या राजाभोज जो सत्यवादी था, आज पर दारा पर मुग्ध है?

(आमों से रस टपकने लगता है। यह देख कर महाराज भोज घबराकर इधर उधर देखने लगते हैं और थोड़ी देर में आसनमे उठकर शीलाके पावों पर गिर जाते हैं।)

शीला—हैं, सन्यासी महाराज यह क्या करते हो ?

सन्यासी—देवी, तुम सती हो—मेरा हृदय कांपता है। मुझे क्षमा करो मैं ही हूँ..........

शीला—हे राजाभोज! आप भयभीत न हो। हम आपकी प्रजा हैं, इससे सन्तान तुल्य हैं। मैं आपको पिता सदृश समझती हूँ। आप सत्यवादी हैं। इसी से सब हाल जान कर भी आपके सामने मुँह खोला है। इससे मेरा पातिव्रत नष्ट नहीं हुआ। यदि आप पर स्त्री लम्पट होते तो इन आमों से रस कभी न निकलता।

राजा—धन्य ! भारतपुत्री धन्य !! तुम जैसी सति शिरोमणियों के बल पर ही भारत का शिर सदैव समुन्नत रहेगा। भारत का सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी उसकी पुत्रियाँ उसकी अटूट धन राशी होंगी। इसमें रंचक भी संदेह नहीं, कि जिसके बल पर संसार के सम्पन्न देश भी उसे शिर झुकावेंगे। (प्रस्थान)

———

वीरांगना-वीरा

पात्र परिचय

पुरुष

महाराणा उदयसिंह	...	मेवाड़ पति
अकबर	... ...	दिल्ली का मुगलसम्राट्
सरदार	... ...	मेवाड़ का सामन्त

स्त्री

वीरा	... ...	उदयसिंह की प्रेमिका
दासी	... ...	वीरा की अर्दली

समय—१५ वीं शताब्दी

स्थान—मेवाड़

कथा प्रसंग

हमारे नाटक की नायिका कौन थी, किसकी बेटी थी, इन प्रश्नों का उत्तर कहीं नहीं मिलता। केवल इतना सा पता मेवाड़ के इतिहास से चलता है कि यह रमणी महाराणा उदय-सिंह की उपपत्नी या रखैल थी। उस मेवाड़ के महलों की रखैल का साहस, चरित्र और आदर्श कितना ऊँचा था यही इस नाटक में बताया गया है।

महाराणा एक समय सम्राट के बन्दी बन जाते हैं। महाराणा के सामन्त महाराणा को छुड़ाने का कोई यत्न नहीं करते, ऐसी दशा में प्रेम का तकाजा पा कर वीरा वीरवेश में सम्राट की सेना के मुकाबले में खड़ी होती है। और महाराणा को अपने बलपर छुटकारा दिलाती है।

मेवाड़ के सामन्त वीरा की इस बहादुरी पर ईर्ष्या करते हैं और अन्त में वीरा की हत्या करवा दी जाती है। मेवाड़ी की वीरपुत्री वीरा अपने कर्तव्य के मार्ग को अपने नवीन रक्त से सींच कर सदैव के लिये स्निग्ध बना कर अधखिली हुई संसार से प्रस्थान कर जाती है। स्वार्थ पर लात मार कर कर्तव्य पर बलिदान होने वाली वीरा का चरित्र आज भी मेवाड़ की पर्वत श्रेणी के अङ्क में पत्थर बन कर एक मौन संदेश सा दे रहा है।

दृश्य पहला

स्थान—वीराका अन्तःपुर

(वीरा—अकेली बैठी हुई देश की भावी पर विचार करती हुई राजपूतों की फूट प्रियता पर आँसू गिराती है)

वीरा—

औरत पुरुष के लिये एक पहेली है! मैं कौन हूँ, क्या हूँ और संसार में मुझे कौन लाया सो कुछ नहीं जानती हूँ। जानती हूँ केवल इतना कि राणा उदयसिंह मुझे शिकार खेलते वक्त जङ्गल में से उठा लाये थे। इससे पहिले मुझे कुछ पता नहीं किस तरह और क्यों जङ्गल में पहूँची थी। परन्तु लोग दुनिया क्यों विश्वास करेगी मेरे इस कथन का? स्त्री कितनी ही सच्ची ही क्यों न हो—वह अपने सच्चेपन के कितने ही प्रमाण क्यों न दे, परन्तु पुरुष समाज उसे पवित्र मानने को स्वीकार नहीं होता। स्त्री की हर अवस्था हर वक्त पुरुष के लिये संदेह की गुंजाइश रखती है।

महाराणा का सहारा पाकर मुझे यह तो कभी आशा न थी कि मैं महल की रखेल बनाई जाउँगी, किन्तु होनहार में वश भी किसका चलता है। आखिर एक तरुण स्त्री का पुरुष समाज जो कुछ भी उपयोग कर सकता है वही मेरा भी हुआ। मैं महारानी के विनोद का सामान बनी, यह सच हुआ किन्तु मैं अब अपने रक्षक के प्रति भला कैसे विश्वास घात कर सकती हूँ।

विनोद—(प्रवेश करके) वीरा।

वीरा—(चौंक कर) कौन, विनोद ! आओ।

विनोद—वीरा, वीरा !

वीरा—विनोद ! कहो आखिर तुम चाहते क्या हो मुझ से ?

विनोद—जो चातक घन से चाहता है, भौंरा फूल से चाहता है।

वीरा—अगर वह न मिल सके ?

विनोद—तो प्रतिहिंसा।

वीरा—तो लो (तलवार देकर) अपनी इच्छा पूरी करो। विनोद ! वीरा ऐसी औरत नहीं जैसी आप सोच रहे हैं। महाराणा यद्यपि सामन्तों के हाथ की कठपुतली, डरपोक और निर्बल हैं किन्तु वे वीरा के माथे के मुकुट, मेवाड़ के धनी और प्रजा के सर्वस्व हैं। वीरा ने जब एक बार महाराणा को हँसकर देख लिया तो अब उसकी हँसी दूसरे किसी का मनोविनोद नहीं कर सकती विनोद ! चले जाओ मेरे सामने से यदि अपने गंदे विचारों को नहीं छोड़ना चाहते।

विनोद—वीरा ! मालुम है कुछ ?

वीरा—क्या ?

विनोद—अब महाराणा की जगह मैं हूँ।

वीरा—हैं ! और महाराणा का क्या हुआ ? कल तो वे युद्ध में गये थे न ? विनोद सच कहो महाराणा कहां हैं ? क्या मारे गये ?

विनोद—सो कुछ भी पता नहीं, तुम तो यह कहो तुम्हें अब क्या पसन्द है। मेरे साथ रह कर सुखी जीवन बिताना या जन्म भर, महाराणा को बरबादी की राह उतारने के अभियोग में, वन्दीगृह में सड़ना ?

वीरा—दोनों ही बातें नहीं ?

विनोद—तब ?

वीरा—उसका उत्तर समय देगा, वीरा के पास इसका कोई उत्तर नहीं है।

विनोद—तो याद रख वीरा, महाराणा अब अकबर के बन्दी हैं। वह उन्हें मरने के समय तक नहीं छोड़ेगा। वाड़ का मे राज्य मुकुट आज नीलाम पर है—जो अकबर की सबसे ज्यादा खुशामदी करेगा अकबर उसी के हाथों मेवाड़ की बागडोर दे देगा। ऐसी दशा में क्या तुम अपना कर्तव्य नहीं सोच सकती ?

वीरा—(विचार पूर्वक) हैं, यह तुम क्या कह रहे हो विनोद ! सच कहो महाराणा कहां है ?

विनोद—कैद में।

वीरा—और तुम्हें राग रङ्ग की सूझी है। शर्म नहीं आती गीदड कहीं के। मातृभूमि की आन नीलाम पर लगी है तब तुम्हीं उसका मूल्य भरने का साहस करते हो। कहाँ तुम्हें यह चाहिये था कि तुम मातृभूमि के नाम पर अपना खून बहाकर अपने कुल का नाम उज्ज्वल करते।

विनोद—वीरा ! खबरदार ! (आगे बढ़ना चाहता है)

दासी—(सहसा प्रवेश करके) बस विनोद सम्भल कर आगे बढ़ना ।

विनोद—ठीक है (दासी को देखता है) समझ लूँगा तुम लोगों को याद रखो वीरा सम्राट का मुझसे ज्यादा मेवाड़ भर में दूसरा कोई कृपा पात्र नहीं है । (प्रस्थान)

दृश्य दूसरा

स्थान—जेलखाना

(महाराणा उदयपुर जेल की कोठरी में खड़े हुए एक पत्र पढ़ रहे हैं ।)

महाराणा—(पत्र बन्द करते हुए) यह पत्र वीराने, कैसे भेजा मुझ तक ! और यह युवक जिसने मुझे पत्र दिया कौन था, आखिर इस बात का कुछ पता तो लगे ? या यह सब कुछ छल था ! अगर यह सब कुछ छल नहीं और सच है तब तो, विनोद एक पहले किनारे का स्वार्थी, नीच और धूर्त निकला । वीरा एक स्त्री और फिर वह भी अकेली क्यों कर मुझे छुड़ा सकेगी । उसने यह साहस भी कैसे किया ?

(बैठ कर सोचने लगते हैं)

ओह ! औरत और इतना बल, इतना साहस ! उदयसिंह शीक्षा लो। वीरा ने इस समय शोक सागर में डूबती हुई जीवन नैया को इस पत्री के पतवार से बचा लिया (सोच कर) भगवान् ! मुझे साहस दो, बल दो, विश्वास और शांती दो ताकि मैं मातृभूमि के लिये मरन दे सकने के अपराध का प्रायश्चित इस कोठरी की शून्यता में हँसता २ पूरा कर सकूँ।

(अकबर और कुछेक राज कर्मचारीगण का प्रवेश)

अकबर—महाराणा ! क्या तय किया ?

महाराणा—(उपेक्षा से) किस बात का ?

अकबर—अच्छा अभी बात का भी पता नहीं ?

महाराणा—मेवाड़ के क्षत्री तो स्वतन्त्रता के सिवाय दूसरी बात जानते ही नहीं।

अकबर—पर अब तो स्वतन्त्रता मिलना असंभव है। हाँ, यदि तुम आधीनता स्वीकार करो तो आजाद किये जा सकते हो।

महाराणा—आजादी ! बादशाह सलामत इस कोठरी से आजाद होकर मैं अपनी गुलामी को दुनियां की बड़ी कोठरी में नहीं फैलाना चाहता। इससे तो यह छोटी सी कोठरी बहुत अच्छी है जहां गुलामी का दायरा भी छोटा ही है।

अकबर—अच्छा, उदयसिंह तुम सीधी तरह न मानोगे ?

महाराणा—जिन्हें भगवान् मरने की शक्ति दे देता है फिर उसे किसी का डर नहीं रहता बादशाह सलामत, है कुछ मालुम ?

(बादशाह सिर हिलाकर क्रोध में प्रस्थान करता है)

राणा—वीरा ! वीरा ! तुमको मैं चाहता तो दूसरी तरह भी रख सकता था। किन्तु तुम्हारे सौंदर्य ने मुझे एक ही मार्ग बतलाया तुम्हारे अपनाने का। पर मैंने आज जाना कि तुम स्वर्ग की देवी हो। आज मेरा सारा मेवाड़ जब मेरे विरुद्ध है, तुम्ही एक ऐसी निकली जो मेरे लिये तड़प र.ी हो !

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

राणा—(चौंककर) हैं, यह शोर कैसा ! (जेल के सीखचोंमें से देखने का नाट्य)

दृश्य तीसरा

स्थान—बनका मार्ग

(वीरा वीर सैनिक के वेप में अकेली चली आरही है)

वीरा—भगवान् ! तुम हर एक के हृदय में निवास करते हो। मैने यदि महाराणा के सिवा किसी अन्य पुरुष की ओर

आँख उठाई है तो आपसे छुपा नहीं। यदि मुझे अपने सतीत्व पर कुछ भी विश्वास है तो आज मुझे बलदो, अवसर दो और मेरे सहायक बनो कि मैं अपने राणाको मुक्त करा सकूँ, चिन्ता नहीं इस कार्य में मुझे जीवन से हाथ धोने पड़ें। (सामने देखकर) अंधेरा गहरा हो रहा है। कदाचित् यह सामने वाला ऊँचा मकान ही जेलखाना है। अब यहाँ काम यों चलने का नहीं। स्त्री वेष ही बनाना ठीक होगा।

(स्त्री का वेष बदलती है)

वीरा—(दीर्घ साँस लेकर) चलो बेचो अपनी कोमलता को यवनों के हाथ। (सामने से एक पहरेदार आता है, वीरा घबड़ाकर खड़ी रहजाती है)

सैनिक—कौन है औरत ?

वीरा—एक दुखिया, असहाय !

सैनिक—(गौर से देखकर) ओह ! हूर है ! (आगे आकर) परीजाद, कहाँ जारही हो रात में ?

वीरा—जहाँ भाग्य ले जायगा।

सैनिक—क्या मैं.........अच्छा २ मैं चलूँ तुम्हें पहुँचाने ?

वीरा—नहीं, मैं अनजाने पुरुष के साथ न जाऊँगी।

सैनिक—तो अभी हमला होने वाला है यहाँ, मालुम है ?

वीरा—रातको ?

सैनिक—हाँ, मेवाड़ी वीर, सुना है, महाराणा उदयपुर की आशना वीरा के उत्साह दिलाने पर आज बादशाह की फौज पर छापा मारना चाहते हैं-भला फिर क्या करोगी ?

वीरा—(डर का नाट्य करके) तो तुम मुझे कहाँ ले चलोगे ?

सैनिक—जेलखाने में जहाँ मेरे रहने का डेरा है।

वीरा—तब चलो जल्दी करो। पर महाराणा की कोठरी से तो दूर है न तुम्हारा डेरा ?

सैनिक—ना, मैं तो खास वहीं रखा गया हूँ। पर चिन्ता मत करो. तुम्हें मैं अकबरी सिपाही की वरदी ला दूँगा। तुम फिर खुशी से रहना मेरे साथ।

वीरा—यह ठीक है ! (प्रस्थान)

दृश्य चौथा

स्थान—जेलखाना । उदयसिंह बैठे हैं

(वीरा पहरेदार के वेष में घूम रही है)

राणा—वीरा ! वीरा !! तुमसे एक बार मिल लेता तो शान्ति से मरता ! तुम स्वर्ग की देवी हो। तुमने मुझे बहुत बड़ा बल दिया। तुम्हारे पत्र ने मुझमें नया जीवन डाल दिया।

(नेपथ्य में हुल्लड़)

(असली सैनिक आकर वीरा से कहता है)

सैनिक—दोस्त ! मेवाड़ी वीरों ने वीरा के बहकाने से छापा मार दिया है । वे लोग जेलपर टूट पडे हैं, तुम यहीं रहना मैं जेल-रक्षक सेना के साथ उन्हें रोकता हूँ । तुम डरना मत । (प्रस्थान)

राणा—वाह वीरा ! वाह !! मैं, चिन्ता नहीं, यहीं रहकर सड़ता रहूँ पर तुन्हे एक बार अवश्य देखना चाहता हूँ ।

वीरा—नाथ !

राणा—कौन, सैनिक या वीरा ?

वीरा—आपकी अभागिनी वीरा ।

राणा—वीरा ! वीरा !! मेरी वीरा !!!

(वीरा ताला खोल कर राणा से प्रगाढ़ आलिङ्गन करती है । और अपनी सैनिक पोशाक पहिन कर वहाँ से चल देती है)

दृश्य पाँचवाँ

स्थान—महाराणा का दरबार-भवन ।

(महाराण वीरा की वीरता पर उसे आज पद दे रहे हैं)

राणा—मेरे शूर सामन्तों ! आज मैं वीरा की वीरता के बदले में उसे क्या दूँ यही सोचने को दरबार कर रहा हूँ । वीरा की

विशालता, उसका स्नेह, उसका देश-प्रेम मेवाड़ में रहने वाले प्राणियों में सबसे ऊँचा है। आज यदि वह मुझसे मेरा जीवन भी माँगे मैं दे सकूँगा।

(घबड़ाये हुए सेवक का प्रवेश)

सेवक—अन्नदाता ! अन्नदाता !! गजब हो गया।

महाराणा—(चौंककर) क्या हुआ ?

सेवक—वीरादेवी हाय (गिर जाता है)

महाराणा—मेरी वीरा —अरे उसे क्या हुआ ?

(सारे दरबार में कानाफूंसी होती है)

महाराणा—(सेवक को उठाते हैं) बोलो बोलो, क्या बात है ?

सेवक—आप पधारिये पहिले।

(दोनों का प्रस्थान। सभा विसर्जित होती है)

दृश्य छठा

स्थान—वीरा का महल

(वीरा बेहोश पड़ी है।)

महाराणा—(प्रवेश) हैं वीरा, वीरा, वीरा, (वीरा पर गिर जाते हैं)

सेवक—महाराणा, अन्नदाता! शान्त ! अब वीरा नहीं है (रोता है)

महाराणा—यह क्या हुआ बनवीर ?

अजीतसिंह जोधपुराधीश

दृश्य पहला

स्थान—राज महल ।

(सम्राट् औरंगजेब के दरबार में जोधपुर के कुछ सामन्त कुमार अजीतसिंहजी को लेकर आते हैं)

औरंगजेब—महाराज जसवंतसिंह की नेक खिदमतों के सिल॰ सिले में हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि उनकी जब्त की हुई जायदाद वापस लौटादी जाय, लेकिन शर्त यह है कि तुमलोग शाहजादे और महारानियों को मेरे सुपुर्द करदो । जब यह बालिग होगा इसे गद्दी वापिस लौटा दी जायगी । अगर तुम ऐसा करने को रजामंद हो तो, मैं तुम्हें भी तुम्हारी छीनी हुई जागीरें दे सकता हूँ ।

सामन्त—जहाँपनाह ! यह हम लोगों के लिये लज्जा की बात होगी यदि हम अपने स्वामी के सुपूत पुत्रको आपके हाथों छोड़कर जागीरें लेने को तैयार होजाँय ।

औरंगजेब—तब क्या तुम यह खयाल करते हो कि तुम बादशाह की मन्शा की खिलाफत करके यहां से जा सकते हो

तुम्हें अपनी इस गुस्ताखी की सजा भोगनी पड़ेगी।

सामन्त—बादशाह सलामत ! शाही फौज तो हस्ती ही क्या रखती है। एक बार तो अगर यमराज भी सेना लेकर आवे तो हम लोग राजे कुमार को नहीं छोड़ सकते।

बादशाह—इतना घमण्ड।

सामन्त—घमण्ड नहीं, सच्ची बात।

बादशाह—अच्छा, कोई है ?

द्वारपाल—अन्नदाता !

औरंगजेब—सेनापति को हुक्म दो कि रनवास, सामन्त गण और शाहजादा निकल कर न जा सकें।

द्वारपाल—जो हुक्म आलीजाह ! (प्रस्थान)

सामन्तगण—परवाह नहीं। जिसका नमक खाया उसके फायदे के लिये प्राणों की बाजी लगा देने में भी शान है।

पटाक्षेप

दृश्य दूसरा

स्थान—शाही महलात का एक भाग।

(मुकुन्ददास और सामन्त का वार्तालाप)

सामन्त—भैया मुकुन्ददास, किसी तरह कुमार अजीत के प्राणों की रक्षा आवश्यक है—इसकी तो चिन्ता नहीं कि हम लोगों का सर्वनाश हो जाय।

मुकुन्ददास—मैं पूँगी बजाना जानता हूँ। तुम कहो मैं सँपेरा बनकर कुमार को झोले में डाल कर ले जाऊँ।

सामन्त—अच्छा हो यदि तुम ऐसा ही करो भैया।

मुकुन्ददास—अच्छा तो मैं भेष बदल कर जल्दी से जल्दी ऐसा ही करता हूँ। (प्रस्थान)

दृश्य तीसरा

(रानी अतिसुखदेजी सिरोही वाली के महल में मुकुन्ददास खीची का प्रवेश)

मुकुन्ददास—महादेवी जी। जोधपुर की भावी आशा इस राजकुमार की रक्षा करो!

अतिसुखदेजी—खीची जी। यह क्या इतने विकल क्यों हो?

मुकुन्द—बादशाह ने रणवास को कैद कर लिया है और सामन्त गणों के प्राणों पर आ बनी है। मैं सँपेरे का भेष बना कर अजीतसिंह को ले भागा हूँ।

अतिसुखदेवी—प्रसन्नता पूर्वक आप राजकुमार को यहाँ छोड़ सकते हैं। मैं स्वयं अपना पुत्र समझ कर जोधपुर की भावी आशा को धरोहर समझ कर रक्षा करूँगी। अजीत के पीछे सारी सिरोही अपने प्राण हथेली पर ले कर मैदान में आने को तैयार होगी। तुम जाओ रणवास की रक्षा का प्रबन्ध करो।

(प्रस्थान)

दृश्य चौथा

(सामन्त गण अपने ही हाथ से रणवास को तलवार की धारा रूपी पवित्र मन्दाकिनी में अवगाहन कराते हुए)

स्थान – वन्दीगृह।

सामन्त—माताओं, जिन हाथों से हमने आपकी सेवा की है, पद पूजा की है उन्हीं हाथों से आज निर्दय और कठोर बन कर आपके गलों पर तलवार चलाते हैं।

महारानी—वीर संतान ! तुम्हें धन्य है जो अपने स्वामी के पीछे भी अपने स्वामी की आन वान का तुम्हें पूरा खयाल है। हम तयार हैं तुम्हारी लपलपाती तलवार की धारा में कूद कर पतिदेव के पास पहुँचने को।

(नेपथ्य से) "सामन्त अभी ठहरो। महारानीयों की रक्षा का साधन सुलभ है। क्षत्रीव्रत का पालन करने में जल्दी न करो।"

सामन्त—कौन बाबा बालकदास जी की जैसी आवाज है। देखूँ, क्या साधन है। माता जी मैं अभी आया।

पटाक्षेप (प्रस्थान)

दृश्य पाँचवाँ

(औरङ्गजेब अपने वजीर से बातें कर रहा है।)

स्थान—राजमहल का एक भाग।

औरंगजेब—आज आठ वर्ष होते आये ये मारवाड़े लोग बाज नहीं आते। उधर सब जगह यही रिपोर्ट आ रही है कि अजीत सिंह का पता नहीं चलता। मेरे पास यही एक अवसर था कि मैं अपनी उस बेइज्जती का बदला लेता कि जो यशवंतसिंह ने मुझे मेरे वालिद के कहने पर आगरे के किले में जाने से रोक दिया था।

वजीर—आलीजाह, हुजूर की ताकत के सामने मारवाड़ों की हस्ती ही क्या है। रहा अजीतसिंह का सवाल सो उसका आखिर तो कभी पता चलेहीगा, हुजूर जब चाहें पकड़ा बुला सकते हैं। इस वक्त तो नमाज़ का वक्त आगया है तशरीफ ले चलिये। (दोनों का प्रस्थान)

दृश्य छठा

(पुरोहित जयदेव की झोंपड़ी महाराज अजीतसिंह वीरवेष में द्वार पर खडे हैं।)

समन्तगण—जय हो अन्नदाता की!

अजीतसिंह—वीरों, तुम मेरे पिता के सच्चे सेवक हो। तुमने मेरी रक्षा की है—यह सब कुछ मैंने पुरोहित जी महाराज से सुन लिया है। जिस आशा पर तुमने मुझे इतनी कठिनाइयाँ झेल कर पालापोषा है उसे मैं पूरी कर तुमसे उऋण होने का व्रत ले चुका हूँ!

सामन्त—तो अन्नदाता सेना भी तैयार है। हुक्म की देर है। आज्ञा दीजिए।

अजीतसिंह—मैं चाहता हूँ सारी सेना हाडा राव दुर्जनसिंहजी की आधीनता में सोजत के मैदान में इकट्ठी रहे—मैं वहीं पहुँचता हूँ। (प्रस्थान)

दृश्य सातवाँ

(औरङ्गजेब का अपने निजि सलाहकार से बात करते हुए दिखाई पड़ना)

स्थान—राजमहल दिल्ली।

औरङ्गजेब—वजीर आजम !

वजीर—जहाँपनाह आलमगीर।

औरङ्गजेब—अजीतसिंह आठवर्ष का हो चुका है और आज पता चला है कि वह सिरोही में पला है। इस वक्त भूखे शेर की तरह वह हमारे हुकुमती अड्डों पर टूट रहा है। जिधर जाता है सफाया कर देता है। मारवाड़े राजपूत उसके इशारे पर टीडी दल की तरह उमडते हैं। अब क्या सूरत इख्तियार की जाय ऐसे मौके पर ?

वजीर—आलीजाह ! वह सच्चा क्षत्री है इसमें तो कोई कलाम नहीं। मेरी समझ में तो उसे उसकी बपौती का कुछ हिस्सा देकर काबू में कर लिया जाय।

(दौवारिक का प्रवेश)

जहाँपनाह का बोलबाला ।

औरङ्गजेब—क्या खबर है ?

दौवारिक—अन्नदाता, अजमेर की खबर है कि शुजाअत खाँ साहब पस्त हो गये हैं ।

औरङ्गजेब—असदखाँ !

वज़ीर—हुक्म जहाँपनाह ।

औरङ्गजेब—जितना जल्द हो सके अजीतसिंह को अपना राज या उसके कुछ हिस्से लौटा कर खामोश करो वरना यह छोकरा गज़ब ढहा देगा, और एक न एक दिन दिल्ली की जड़ भी ढीली हो जायगी ।

वज़ीर—जो हुक्म आलीजाह ! (प्रस्थान)

दृश्य आठवाँ

(अजीतसिंह शुजाअत खाँ को गिरीफ्तारी में लेकर)

स्थान—एक पहाड़ीस्थान ।

अजीतसिंह—बोलो सूबेदार साहब शाही अमल को काम में लूँ या राजपूतों के फर्ज़ को ।

शुजाअत—मेरे सरदार, राजपूत होकर कायरों का सा काम कब बन सकता है आपसे, मैं तुम्हारी गाय हूँ ।

अजीत—गाय ! बस, एक सच्चा राजपूत अब तुम्हें कभी तकलीफ़ न पहुँचायेगा । जाओ तुम्हें आजाद किये देता हूँ, वरना जिस तरह बादशाह सलामत अब तक बर्ताव करते रहे हैं—मैं भी आपके साथ वही करता ।

(शुजा को छोड़ देता है, शुजा कृतज्ञता पूर्ण आँखों से देखता हुआ निकल जाता है)

पटाक्षेप

दृश्य नवाँ

(महाराज अजीतसिंह गद्दी पर बैठे हैं)

स्थान—दरबार भवन

सामन्त मुकुन्ददास खींची—महामान्य ! महाराजाधिराज, आज आपके बालभास्कर जैसे उदीयमान प्रताप के आगे शत्रु ने गर्दन झुका दी है। मातृ भूमि अपने वीर पुत्र को अपनी गोद में बैठा देख प्रेम-पुलकित हो रही है। आज कैसा शुभ दिन है कि आप अपने योग्य पिता की पवित्र गद्दी का अपने ही बाहुबल से पुनः प्राप्त कर मारवाड़ की असंख्य प्रजा के भाग्य विधाता बने हैं। प्रजा आतुर है अपने अन्नदाता के दर्शनों के लिये। क्या अन्नदाता बाहर चल कर असंख्य प्रजा की इच्छा पूरी करेंगे ?

अजीतसिंह—सामन्त साहब ! मैं बालक हूँ—आप जैसा कहिये मैं अवश्य करूंगा। मुझे विश्वास है जो लोग जागीरों के लोभ को ठुकरा कर अपने स्वामी के हित को अपना लक्ष्य बना सकते हैं—मेरे भले

को कभी नहीं भुला सकते हैं। और फिर प्रजा का तो मैं दास हूँ, प्रजा के नाम पर मर मिटना—प्रजा के सुख को सुख और प्रजा के दुःख को दुःख समझना राजा का मोटा और पहला कर्तव्य है। चलिये मैं चलता हूँ।

(सब का प्रस्थान)

लगन का फल

पात्र परिचय

पुरुष

एकलव्य	—	भील राजकुमार
शिवहर	—	एकलव्य का मित्र
अर्जुन	—	प्रसिद्ध धनुर्धर पाण्डव
द्रोण	—	कौरव पाण्डवों के धनुर्विद्या गुरू

स्थान—हस्तिनापुर

समय—महाभारतकाल

कथाप्रसंग

एकलव्य धनुर्विद्या का शोकीन होने के कारण इस विद्या के पारंगत और महारथी द्रोण के पास जाता है। किन्तु शूद्र होने के नाते द्रोण उसे फटकार देते हैं। वह अपनी लगन का पक्का रहता है और निराश न हो कर द्रोण की मिट्टी की प्रतिमा बना कर रात दिन अभ्यास करने लगता है। परिणाम यह होता है कि उसे धनुर्विद्या का अचूक अभ्यास हो जाता है। उसकी तेजी और फुर्ती देख कर अर्जुन द्रोण से शिकायत करता है। द्रोण उससे जा कर पूछता है कि तुम्हें यह विद्या किसने सिखाई वह उत्तर में द्रोण की मिट्टी की प्रतिमा को दिखलाकर कहता है—'द्रोण महाराज ने'। इस पर अर्जुन का पक्षपात करने वाले द्रोण गुरु दक्षिणा में उससे उसका दाँये हाथ का अंगूठा मांग लेते हैं वह साहसी वीर तुरन्त अंगूठा काट कर भेंट कर देता है! एक लव्य की सच्ची लगन, उत्साह, गुरुभक्ति और वीरता आर्य देश के लिये कितने ऊंचे आदर्श हैं यही इस नाटक का जीव है।

लगन का फल

दृश्य पहिला

(एक भील सरदार का बेटा एकलव्य धनुर्विद्या सीखने के विषय में अपने मित्र से बातें कर रहा है)

स्थान—जंगल

एकलव्य—क्यों भैया शिवहर ! यह तो बताओ कि महर्षि द्रौण को किस तरह गुरू बनाया जाय ?

शिवहर—क्यों किसलिये।

एकलव्य—वे धनुर्विद्या के आचार्य हैं ! आज संसार में उनसे बढ कर धन्वी नहीं है दूसरा। वे अगर मुझे शिष्य बनालें तब दिखलाऊँ दुनियाँ को कि धनुर्विद्या क्या चीज है। भैया मुझे बड़ी लगन लगी है उस विद्या में पारंगत होने की।

शिवहर—राम-राम क्या कह रहे हो एकलव्य ? द्रौणाचार्य ब्राह्मण हैं वे कभी शिष्य न बनावेंगे तुम्हें।

एकलव्य—क्यों ?

शिवहर—तुम शूद्र हो।

एकलव्य—तब भी मनुष्य हूँ।

शिवहर—पर ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य नहीं।

एकलव्य—इससे क्या कमी आती है धनुर्विद्या सीखने में ?

शिवहर—विद्या सीखने में कोई कमी नहीं आती, परन्तु द्रोणाचार्य एक शूद्र को विद्या कभी नहीं सिखायेंगे।

एकलव्य—तो क्या मनुष्य-मनुष्य में एक दूसरे से इतनी नफरत करता है ? बड़े छोटों का भाव यहां तक बढ गया कि छोटे लोगों को बडे के पास तक नहीं आने देते। तब क्यों न यह समाज शीघ्र ही रसातल को चला जाय और क्यों न दूसरी सृष्टि हो जिसमें मानवता के नाते भेदभाव ही न रह जाय। ओह ! मैं इतना अभागा हूँ कि द्रोण के दर्शन भी नहीं कर सकता। (सोचने लगता है) अच्छा, चिन्ता नहीं—

धुनके अन्धेको चिन्ता का कठिनाई के हों पहाड खड़े।
आंधी आवे,बद्दल बरसे पद पद पर हों यदि खाड़ बड़े॥

अच्छा, भैया जाता हूँ देखूँ गुरु देवके पास अब मैंने तो यह प्रतिज्ञा करली है कि धनुर्विद्या सीखूँगा तो द्रोणाचार्य से ही सीखूँगा।

(प्रस्थान)

दृश्य दूसरा

(जङ्गली प्रदेश में नदीतट पर एक मिट्टी की बनी हुई द्रोण की मूर्ति के सामने खड़ा हुआ एकलव्य)

स्थान—नदीतट।

एकलव्य—गुरुदेव ! आपने मुझे शूद्र कह कर फटकार दिया। मैं नीच हूँ इस लिये आपका शिष्य न हो सका, किन्तु मन से मैंने आपको अपना गुरु बना लिया है। आपकी यह मिट्टी की मूर्ती ही मुझे आदेश करेगी। इसी के संकेत पर आपका ठुकराया हुआ शिष्य एकलव्य धनुर्विद्या का अभ्यास करेगा और दुनियां को बतलायगा कि लगन के पक्के, धुन के सच्चे परिश्रम के पीछे असंभव को किस तरह संभव कर लेते हैं। जय गणेश (बाण छोड़ता है)

दृश्य तीसरा

(द्रौणाचार्य अपनी शिष्य मण्डली द्वारा एक उद्यान
में बाण विद्या का प्रदर्शन करा रहे हैं)

स्थान—राजकीय उद्यान

द्रौण—पुत्र अर्जुन ! तुम्हारी बाण चलाने की लाघवता देखकर मैं तुम पर प्रसन्न हूं। द्रौणाचार्य के नाम को संसार में तूही चमकायेगा। मैं आज तुझे वचन देता हूँ कि समस्त धनुर्धारियों में तुझे सबसे आगे रखूँगा। तेरे से बढ़ कर इस विद्या में दूसरा पारंगत न हो सकेगा।

अर्जुन—(प्रणाम करके) गुरुदेव की कृपा के लिये दास आभारी है। परन्तु महाराज ......

द्रौण—कहो चुप क्यों हो गये ?

अर्जुन—कल हम लोग शिकार में गये थे। वहाँ हमने एक भील बालक को देखा वह बड़ा ऊँचा दर्जे का तीरन्दाज है। हमारे कुत्ते को भोंकने भी न दिया था कि उसका बाणों से मुंह सीं दिया।

द्रोण—वह कौन है?

अर्जुन—वह है आपका शिष्य एकलव्य भील बालक।

द्रोण—नहीं, मेरी यह प्रतिज्ञा झूँठी नहीं हो सकती कि तुमसे बढ कर कोई धन्वी नहीं होगा।

अर्जुन—यह तो एकलव्य यदि आपका शिष्य है तो झूँठी ही समझिये गुरुदेव!

द्रोण—अच्छा चलो मुझे दिखलाओ वह कहाँ है।

(सब का प्रस्थान)

दृश्य चौथा

(एकलव्य द्रोण की मिट्टी की मूर्ति के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ वन्दना कर रहा है)

स्थान—नदी तट

गुरु की वन्दना—

जग में धन्य गुरु का नाम
नाम से ही काम होते, सरल कठिन तमाम! जगमें०
गुरुवर तुम्हें न पाया मैंने पाई मूर्ति ललाम।
दर्शनों से ही हुआ सब पूर्ण मेरा काम। जगमें०

(द्रोण के साथ अर्जुन का प्रवेश)

अर्जुन—यह है गुरुदेव वह भील बालक !

द्रोण—एकलव्य तुझे यह विद्या मैंने तो नहीं सिखाई फिर तूने किससे सीखी ?

एकलव्य—(प्रणाम करके) गुरूदेव की मूर्ती ने। नाथ ! आपने जब मुझे दुतकार कर, शूद्र बतलाकर पामर मान कर ठुकरा दिया तब मैंने आपकी मिट्टी की मूर्ती बना कर उसी के आधार पर यह सब कुछ प्राप्त किया है। गुरुदेव की कृपा से मेरी आज सारी अभिलाषा पूरी हो गई है। महाराज ! मुझे धुन थी कि मैं आपसे यह विद्या सीखूँ और ऐसी सीखूँ कि मेरे जैसा दूसरा धनुर्धारी भी न निकले सो सब पूरा हो गया आपके अनुग्रह से।

द्रोण—अच्छा यदि तू मेरा ही शिष्य है तो मुझे गुरू दक्षिणा दे।

एकलव्य—(प्रसन्नता पूर्वक) आज्ञा दीजिये गुरुदेव ! अहोभाग्य जो आज गुरूदेव स्वयं पधार कर गुरुदक्षिणा की आज्ञा दे रहे हैं—एक लव्य अपने प्राण तक न्यौछावर कर सकता है इन चरणों पर।

द्रोण—पहिले वचन दे कि जो माँगूगा वही देगा।

एकलव्य—अहोभाग्य, गुरुदेव जो आज्ञा हो दूँगा, माँग लीजिये ! मेरी विद्या सफल ही तब होगी कि जब आप प्रसन्न हो कर मुझसे गुरु दक्षिणा माँग लें और मैं आपकी

द्रोण—अच्छा यदि तू मेरा शिष्य है तो तू मुझे अपने दाँयें हाथ का अँगूठा काट कर दे दे गुरु दक्षिणा में।

एकलव्य—(हँसते हुए प्रसन्नता पूर्वक) लीजिये गुरुदेव, यह अंगूठा आपकी भेंट है। (काटकर सामने कर देता है)

द्रोण—धन्य है वीर वर तेरी गुरु भक्ति को और धनुर्विद्या सीखने की लगन को। तू सच्चा वीर है। तेरी धुन सच्ची है। आगे होने वाले आर्य वीर तेरी धुन से, तेरी लगन से, तेरी वीरता और गुरु भक्ति से शिक्षा लेंगे। आज यह तेरे साहस और परिश्रम का ही फल है कि मैं तेरे सामने हाथ फैला रहा हूँ। वत्स, परिश्रम की कसौटी पर तूने अपने आप को कस कर आज सिद्ध कर दिया कि तू खरा सोना है।

एकलव्य—(द्रोण के चरण पकड़ कर) गुरुदेव, मेरी धनुर्विद्या सफल हो ऐसा वरदान दीजिये?

द्रोण—एवमस्तु, पुत्र, अर्जुन को छोड़ कर तेरे समान अब भी जब कि तेरा अंगूठा मैंने ले लिया, दूसरा कोई तेरे मुकाबले धन्वी नहीं होगा।

एकलव्य—गुरु देव आपकी असीम दया है।

पटाक्षेप (पुनः चरण पकडता है)

सम्राट् मिकाडो

पात्र परिचय

पुरुष

राजगुरु	—	जापान के धर्मगुरु
सम्राट् मिकाडो	—	जापान का उन्नायक
प्रजाजन (२)	—	जापानी जनता के नायक
सम्पादक	—	भारतीय पत्रकार
लेखक	—	पत्र कार्यालय का लेखक

स्थान—जापान, दिल्ली (भारत)

समय—वर्तमान युग

कथा...प्रसंग

सम्राट् मिकाडो ने कैसे जापान जैसे छोटे से टापूको अपनी बुद्धिमत्ता से संसार में साम्राज्य बनाया और कैसे चीन जैसे सुविशाल देश से टक्कर लेने की शक्ति प्राप्त कर अपने देश की धाक जमायी यही इस नाटक की कथा का सार है।

सम्राट मिकाडो

दृश्य पहिला

(सम्राट् मिकाडो अपने कमरे में चिन्तित)

स्थान—जापान का राजमहल

मिकाड़ो—संसार के इतिहास में जिस देश के लिये एक भी पन्ना सुरक्षित नहीं—भला वह भी कोई देश हो सकता है, वहां का राजा भी राजा माना जा सकता है ? कभी नहीं। मैं और मेरा देश ऐसे ही हैं। आज मेरे जापान की कहीं गिनती नहीं। कला कौशल,व्यापार-व्यवसाय, नीतिरीति, बलवीर्य, वैभव और विद्यासे शून्य जापान को जब राजगद्दी से बैठकर देखता हूँ—मुझे रुलाई आती है। क्या कभी मेरा देश भी साम्राज्य बन सकता है; क्या यहाँ भी व्यापार-व्यवसाय का केन्द्र हो सकता है, क्या मैं भी कभी सम्राट् कहला सकता हूँ ·······

जापान का राजगुरु—(प्रवेश करता है) यह सब कुछ संभव है सम्राट्!

सम्राट—संभव है ! (खड़ा होता है) पधारिये महाराज ! कैसे आना हुआ ?

गुरु—धर्म में विश्वास रखते हुए आगे बढ़ो। जनता को जागृत करो। उसे अंधेरे में रखते हुए कभी कुछ नहीं होसकता। राजा और प्रजा दोनों अङ्ग उन्नत होंगे तभी देश में जागृति होगी।

सम्राट्—महाराज। मैं तैयार हूँ—मेरा मार्ग आप बनाइये। मैं उस पर खूब दौड़ूँगा—थक जाने पर भी दौड़ूँगा, अपने अन्तिम लक्ष्य पर पहुँचे बिना विश्राम न लूँगा। परन्तु ....

गुरु—परन्तु ...... एक बहुत बड़ी कमी की सूचना देता है। किसी कार्य में किन्तु, परन्तु का प्रयोग होते ही उसकी सफलता में सन्देह हो जाता है। इस कारण उत्साही लोग तो अपने कोष से इस शब्द को ही निकाल देते हैं मैदान में आने से पहले। समझे?

सम्राट्—समझा। मेरा मतलब सिर्फ यह था महाराज कि देश में इस समय दो दल हैं। एक नया और दूसरा पुराना। इन दोनों में फूट, द्वेष और छल कपट चल रहा है। और किसी भी देश के लिए इस तरह के भाव सबसे अधिक घातक होते हैं।

गुरु—यह ठीक है। तब भी एक साहसी नेता के लिए इन कठिनाइयों को पार कर जाना असंभव नहीं

सम्राट्—तब चलिये मैं आपके साथ हूँ—आदेश दीजए आप और उसे कार्य रूप में परिणित करूँगा मैं। (प्रस्थान)

दृश्य दूसरा

(प्रजाजन नये शासन विधान के अनुकूल बातें कर रहे हैं)

१ प्रजाजन—भाई बात तो सच है—हमारे देश की कहीं गिनती ही नहीं। हमें भी दूसरे देशों के मुकाबले में आना चाहिए। भेदभाव और फूट को तिलांजली देकर अपने राजा को मदद करने के लिये तैयार हो जाना चाहिये।

२ प्रजाजन—यह तो सब कुछ ठीक है किन्तु आलस्य में डुबा हुआ जापान महाराज के इन विचारों से सहमत मुश्किल ही होगा।

१ प्रजाजन—तब क्या अपनी उन्नति को भी लोग पसन्द नहीं करेंगे ?

२ प्रजाजन—हाँ।

१ प्रजाजन—क्यों ?

२ प्रजाजन—क्यों कि वे आलस्य का आनन्द लूट रहे हैं, मेहनती बनना कैसे अच्छा लगेगा उनको।

१ प्रजाजन—गुड़ खाने वाला कदाचित् शक्कर पसन्द न करेगा परन्तु एक वार शक्कर चख लेने पर उसे छोडेगा भी नहीं। ठीक इसी तरह मेहनत का फल देखने पर और जापान को उन्नतिगामी देख कर ऐसा मन्दभागी कौन होगा जो मैदान में न आकर घर में सोता पड़ा रहेगा। हम तो प्रतिज्ञा कर चुके हैं—जगह जगह लोगों में प्रचार करेंगे और जब तक जापान एक साम्राज्य न बन जायगा चैन न लेंगे।

२ प्रजाजन—अच्छा मान लो जापान एक उन्नत देश हो गया तब भी इससे होगा क्या ? आखिर रहेगा एक टापू ही ।

१ प्रजाजन—टापू ! हमारे धर्मगुरु देश भारत का आदर्श याद करो । लंका भी एक टापू ही था पर वहाँ के राजा का प्रताप समस्त भारत पर ही नहीं अन्य देश देशान्तरों तक में फैल रहा था ।

२ प्रजाजन—ठीक है—चलो हम भी तैयार हैं, लेकिन अब इस कार्य में ढीलापन अच्छा नहीं । हमारे देश का छोटा होना भी हमारे हित की बात है । कम आद- मियों का संगठन आसानी से हो जाया करता है । आओ सार्वजनिक सभा का आयोजन करें ।

(प्रस्थान)

दृश्य तीसरा

(सम्राट् और राजगुरु आपस में निश्चय करके पाँच सिद्धान्त लागू करने की योजना बनाते हैं)

स्थान—सम्राट का निजी भवन ।

गुरु—ठीक है इन पाचों सिद्धान्तों को लक्ष्य में रख कर आगे बढो । प्रजा तुम्हारे साथ होगी यह मेरा पूरा विश्वास है । कल मैंने इसी विषय में जन सम्मती भी ले ली है—बहु मत हमारे साथ होगा ।

सम्राट्—तो फिर इन सिद्धान्तों के अनुसार शासन—विधान में बदल कर देने की घोषणा कर दी जाय।

गुरू—अवश्य। एक आम जन सभा बुलाकर उसमें इन सिद्धान्तों को रख दो। जब इन पर जनमत आ चुके, वहीं विधान का प्रश्न रख दो और शासन की काया पलट करदो। देखो फिर आज का जापान क्या बन जाता है।

सम्राट्—जो आज्ञा।   (प्रस्थान)

दृश्य चौथा

(जन साधारण की विराट सभा)

स्थान—जापान

(मंच से उठते हैं। जनता करतलध्वनि करती है।

(सम्राट बोलते हैं)

सम्राट्—मेरी प्यारी प्रजा! मेरे हृदय मे एक अरसे से हमारी गिरी हुई हालत को देख २ कर खेद हो रहा था। एक दिन जापानी राजगुरू की कृपा से मेरे सामने उजाला हुआ और मैं अपनी प्रजा को अपनी प्यारी मातृभूमि जापान को उठा सकने के लिये पाँच सिद्धान्त बना सकने में समर्थ हो गया। वे सिद्धान्त मैं आप लोगों के सामने पेश करता हूँ—

१—अब जापान अपने राजकाज के विचारों पर स्वतन्त्रता से वाद—विवाद करने के लिये एक मन्त्रि मण्डल बनायेगा जो जन साधारण के चुने हुए प्रति निधि रूप में जनसम्मति के अनुसार देश का शासन चलायेगा।

२—दरबार का प्रमुख उद्देश्य यह रहेगा कि राज के हर काम में प्रत्येक सम्प्रदाय की सम्मती का आदर करे।

३—शासन का दृष्टि कोण सदा सर्व साधारण की उचित इच्छाएँ और मनो कामनाएँ पूरी करने के साधनों की ओर रहेगा।

४—सब प्रकार के आचार विचार और उन्नती की बाधक प्रथायें उठादी जायँगी। न्याय और सचाई के साथ बिना पक्षपात प्रत्येक वर्ग और जाति पर शासन किया जायगा।

५—संसार भर से विद्या और कला सीख कर देश में फैलाई जा सके इसके लिये योग्य व्यक्तियों को चुन कर उस कार्य के लिये यत्र-तत्र भेजने में सरकार को स्वतन्त्रता होगी।

कहिये क्या ये बातें आपको स्वीकार हैं। (प्रजा एक ध्वनी से) सहर्ष स्वीकार हैं।

सम्राट्—मैं आप लोगों का और राजगुरू जी का पूर्ण कृतज्ञ हूँ—अब मुझे आशा है हमारा जापान एक दिन अवश्य संशार की दृष्टि का केन्द्र बन कर रहेगा।

पटाक्षेप

दृश्य पाँचवाँ

(एक पत्र संपादक की अपने लेखक से बातचीत)

स्थान—भारत में दिल्ली नगर।

सम्पादक—आज की डाक में क्या जापान ही जापान की खबरें हैं?

लेखक—जी हाँ, आजकल तो जिधर देखिये जापान के ही माल का बोलबाला है। हर अखबार के प्रमुख कालमों में जापानी माल, जापानी कला और जापानी तरक्की का ही जिक्र रहता है।

सम्पादक—देखते हो यही जापान आज के कुछ वर्ष पहिले कहाँ था, कोई नहीं जानता था!

लेखक—इतना ही नहीं—फौजी दृष्टि से भी जापान अब किसी से पीछे नहीं रहना चाहता।

सम्पादक—यह सब कुछ वहाँ के सम्राट मिकाडो के परिश्रम का परिणाम है। वे जब से गद्दी पर बैठे तभी से इस धुन में थे। १४ वर्ष की आयु से आज ३५ वर्ष की आयु तक उन्होंने अपने सुखों को तिलांजली देकर अपने देश और जाति को उन्नत कर संसार में अपनी शक्ति की धाक जमादी है।

ले०—तभी साहब अब सम्राट कहलाने लगे हैं।

सम्पादक—खुशी की बात है—इन सब खबरों को प्रकाशित कर दो—ताकि दूसरे देश भी जापान को अपना आदर्श मान कर आगे बढ़ें।

पटाक्षेप

दृश्य छठा

(सम्राट और राजगुरू की बात चीत)

स्थान—राजमहल

सम्राट्- महाराज ! आपकी कृपा से आज जापान का आकाश मण्डल कल और कारखानों से श्याम हो रहा है। वायुयान, युद्ध का सामान, व्यापारिक कलपुरजे।मशीनें, मोटरें तथा अन्य आवश्यक पदार्थ आज हम लोग दूसरों को दे सकने में समर्थ हैं—एक दिन हम इन चीजों के लिये दूसरों के मोहताज थे।

गुरू—बड़े हर्ष की बात है। आपकी मनोकामना पूर्ण हुई !

सम्राट्—यह सब गुरूदेव की कृपा है महाराज ! अब मैं समझता हूँ वह दिन दूर नहीं जब हम लोग हर तरह सशक्त होकर संसार की छाती पर अपने लिये एक आदर्श स्थान बना लेंगे।

गुरू—एवमस्तु। पटाक्षेप

———

तानसेन

पात्र परिचय

पुरुष

तानसेन	—	प्रसिद्ध गायक
स्वामी हरीदास जी	—	हरीदासी सम्प्रदायके महात्मा
मकरन्द पाण्डेय	—	तानसेन के पिता
सम्राट अकबर	—	दिल्ली का बादशाह

समय—१५वीं सदी

स्थान—ग्वालियर

कथाप्रसंग

अपने पिता मकरन्द पाण्डेय के दबाने पर बाग की निगरानी रखने का काम करते वक्त तरह तरह के जानवरों की बोली की हूबहू नकल उतार लेने वाले तानसेन किस प्रकार स्वामी हरीदास जी के साथ गये। कैसे गायन में प्रवीण हो कर किस प्रकार अकबर की नजरों में चढ़े आदि आदि ही इस नाटक में वर्णित हैं। भारत के अनोखे बालकों का अपूर्व उदाहरण तानसेन क्या था इस नाटक से स्पष्ट हो जाता है।

तानसेन

दृश्य पहिला

(तानसेन अपने मित्र से वार्तालाप करता हुआ
प्रवेश करता है।)

स्थान—मकरन्द पाण्डेय के बाग का पासवाला भाग

तानसेन—भैया मुकुन्द, तुम्हारे पिता तुम से बड़े दुखी हैं। संसार में पुत्र पैदा होने पर मां बाप को एक असीम आनन्द होता है—पर जब तुम्हारी तरह पुत्र उन्हें कुढ़ाने लगता है—उनकी आत्मा का वह सुख कहां रह सकता होगा ? यह तो तुम्हें शोभा नहीं देता।

मुकुन्द—तानसेन! अपने भी पिता से पूछा है—वे बिचारे रात दिन बाग की रक्षा करते करते परेशान हैं। कल हमारे यहां गये थे, कह रहे थे कि तानसेन तो हाथ बँटाता नहीं, समझ में नहीं आता क्या करेगा आखिर। आवारा की तरह इधर उधर घूमा करता है। पहिले अपने पिता की शिकायत हटाओ फिर मुझे उपदेश देना। चलो हटो रास्ते से। (प्रस्थान)

तानसेन—(स्वगत) बिल्कुल ठीक। मुकुन्द ने मेरी आँखें खोल दीं। चलूँ पिता जी की इच्छा पूरी करूँ। (सोचकर) मैंने

तो कभी उनकी मरज़ी का विरोध नहीं किया फिर उन्होंने मुकुन्द के पिता से मेरी शिकायत क्यों की ? न तो उन्होंने मुझे कभी बाग की रक्षार्थ कहा और न मैंने इन्कार ही किया। अस्तु, चलूँ आज से बाग की रक्षा का ही काम सँभालूँ।

(प्रस्थान)

दृश्य दूसरा

(मकरन्द बाग में बैठा है, तानसेन प्रवेश करता है।)

स्थान—बाग

तानसेन—पिताजी! आप घर हो आइये, मैं यहां हूँ। अब मैं नित्य बाग आया करूँगा और आपका हाथ बटाया करूंगा।

मकरन्द—(मुँह चूम कर) बेटा! बड़ी खुशी से आया करो। देखो किसी वृक्ष पर मत चढ़ना। जानवरों की निगाह रखना कहीं फलों को नष्ट न कर जाय। और इधर उधर के लुच्चे-लफंगों का भी ध्यान रखना कहीं चुरा कर फल न ले जाँय।

तानसेन—अच्छा पिताजी, आप निश्चिन्त रहिये।

मकरन्द—आज तुम्हारे मन में यह कैसे आई कि बाग की रक्षा करने चलूँ।

तानसेन—आपने तो आज तक कभी आज्ञा दी नहीं—स्यायद प्रेम वश आप मुझे नहीं कहते थे, किन्तु फिर भी पुत्र का भी तो कोई फर्ज होता है पिताजी !

मकरन्द—सुन्दर, मेरे लाल ! मेरे वत्स !! अच्छा मैं जाता हूँ।

(प्रस्थान)

तानसेन—(गौर से पशु पक्षियां की बोलियां सुन कर अपने गलेमें उतारने लगता है। यहाँ तक की पासके जङ्गल से सिंह की ध्वनी सुन कर उसे भी अपने गले में बसा लेता है और चोरों को डरा कर भगाया करता है। धीरे धीरे प्रसिद्ध हो जाता है कि मकरन्द के बाग में सिंह रहने लगा है।)

तानसेन—(सिंह की बोली बोलता है)

मकरन्द—(प्रवेश) अरे राम अब क्या करूँ ? लड़के का क्या हाल हुआ होगा आज। मैं उसे क्यों छोड गया अकेला। (सामने देखकर किसी को पुकारना चाहता है इतने ही में स्वामी हरिदासकी मण्डली आजातीहै)

मकरन्द—स्वामी जी महाराज दण्डवत !

हरिदासजी—प्रसन्न रहो भैया, क्यों, व्याकुल कैसे हो ?

तानसेन—(पुनः सिंह की तरह बोलता है। सारे साधु और मकरन्द एक साथ डर जाते हैं। साधु आगे बढ़ने से इनकार करते हैं)

वजीर—सरकार सुरीला कैसा कहिये, उसके गाने में कुछ ऐसी तासीर है कि जङ्गली जानवर यहा तक कि परिन्दे तक गाय हो जाते हैं। मोर, हरिण तो उसके पास आकर उसे सूंघने लगते हैं। इतना ही नहीं जब वह तानपूरा लेकर पद गाने बैठता है तो नाजनियों के हवास बिगड़ जाते हैं। वे पागल की तरह उसके पास खड़ी २ देखा करती हैं।

अकबर—क्या मौसमी राग गाने की उसे ऐसी महावरत है कि मौसम बदल जाता है ?

वजीर—बेशक। मेघराग और दीपक राग गाने पर मैंने खुद देखा है बद्दल बरसने और दीये जलने लगते हैं

अकबर—तब उसे दरबारी रुतबा देकर क्यों न यहाँ लाया जाय ?

वजीर—जो हुक्म ! पर बन्दे नवाज वह सच्चे फकीर का चेला है—आप चलियें तो स्यायद आ जाय वरना वैसे तो मुमकिन नहीं कि वह यहां तक आना भी पसन्द करे।

अकबर—जरूर मैं आज ही चलूँगा। जाओ तैयारी कराओ चलने की। (प्रस्थान)

दृश्य पाँचवाँ

(तानसेन यमुना किनारे पर बैठे बैठे तानपूरे पर

मूर्ख मण्डली

पात्र परिचय

पुरुष

सिपाही	—	मूर्ख पुलिसमैन ।
घेवरदास	—	मूर्ख पिता ।
पतङ्गप्रिय	—	मूर्ख पुत्र ।

स्त्री

शीशी	—	मूर्ख पुत्री
खरला	—	शीशी की पड़ौसिन

स्थान—शिकार पुर

समय—१६ वीं सदी का पिछला भाग

कथा...प्रसंग

शिकारपुर के लोग अपनी भोंड़ी सूझ के लिये मशहूर हैं। घेवर दास का घराना भी वैसा ही मूर्ख घराना है। शीशो और पतङ्ग प्रिय घेवरदास की पुत्री और पुत्र हैं। दोनों परले किनारे के मूर्ख हैं। खरला शीशी की मूर्ख पड़ौसिन है। खरला को कैसे मर्द और औरत दोनों बनाया जाय यह झगड़ा चल रहा है। इसी का निबटेरा करने शीशी और पतङ्ग वाजार जाते हैं। वहां उनकी एक ठेले से टक्कर होती है। ठेलेवाला इन्हें उल्लू की औलाद कह देता है। यह घेवरदास सुन लेता है और ठेलेवाले को मारता है। ठेलेवाला खुद 'उल्लू' कहता है अपने आप को। इस पर घेवरदास का खयाल यह होता है कि अगर यह उल्लू हुआ तो शीशी और पतङ्ग जिन्हें इसने उल्लू की औलाद कहा है वे इसके लड़के लड़की हो गये। इससे तो मैं ही उल्लू रहूँ तो अच्छा है। यहाँ झगड़ा हो जाता है। खरला मकान में बन्द रहने से पुकारती है! पुलिस आकर घेवर दास को मय शीशी और पतङ्ग के हवलेजा के मुकदमे में चालान कर देती है!

मूर्ख मण्डली

दृश्य पहिला

स्थान—शीशी के मकान का बरामदा।

शीशी—(प्रवेश) गरीबी मिली, अच्छा ही हुआ, मैं बदसूरत ही हूँ-यह भी अच्छा ही हुआ (हँसती है) अरी बहन खरला! ओ खरला आ तो जरा!

खरला—क्या है दीदी!

शीशी—(हँसकर) अरी तू मुझे दी दी न कहा कर।

खरला—क्यों?

शीशी—इस लिये कि कहीं तेरी बिमारी मेरे न लग जाय।

खरला—क्या नातेदारी से बिमारी भी आ जाती है।

शीशी—और नहीं तो! हाँ परन्तु यह तो कहो तुम मालदार हो कर भी गरीबों की तरह बीमार क्यों हो? अरे डाक्टर, हकीम, वैद्य जो रुपये के लिये सिरपर पैर रखकर भागे भागे फिर सकते हैं तुम्हें क्यों मयस्सर नहीं? आग लगे ऐसे धन पर जो धरने उठाने की मेहनत के सिवा कभी कुछ काम न आये और जो आफतों को घटाने के बदले एक न एक नई बीमारी और लाये।

खरला—यह कैसे दीदी!

शीशी—फिर वही दीदी। अरी मूर्खा, देख रुपये का रखना बड़ी टेढ़ी खीर है। रात-दिन यही वहम सवार रहता है कहीं इसे चोर न चुरालें, कहीं उधार दे दें तो कोई रख न लें। कहीं हमी इसे खर्च न कर डालें।

खरला—तुम्हें ये सब बातें कैसे मालुम हैं, तुम तो गरीब हो न?

शीशी—तो क्या! हो पड़ोस में तो धनी लोग रहते हैं।

खरला—बहन!

शीशी—फिर वही!

खरला—भूली-भूली, अब न कहूंगी। हां सुनो हम औरतों की तकदीर को तो विधाता ने एक ही साँचे में ढाली है। चाहे कोई गरीब हो या अमीर हक के मामले में दोनों बराबर हैं। क्या खाने में क्या पीने में क्या सुख में क्या दुःख में औरत को तो जबान हिलाना ही पाप है। मेरा इलाज होता भी कैसे? और उन्हें कुछ परवाह नहीं।

शीशी—सच पूछो तो औरतों का शृँगार ही जबान चलाना है। क्योंकि वह जबान ही क्या जो न खाने के लिये हो न हिलाने के लिये। बावली यह तेरी भूल है जो तू अपने हकों को छोड़ बैठी। अरी खरला ब्याह के बाद तुझे हो क्या गया। बुड्ढे पति की स्त्री को तो और भी चुलबुली होना चाहिये।

खरला—क्यों?

शीशी—यों कि उपे पति की एवज का काम भी खुद ही करना पड़ता है।

खरला—अच्छा जाने दो इन बातों को। तुम तो यह बताओ अब तुम्हारी स्यादी कब है?

शीशी—मेरी!

खरला—हाँ, मैंने सुना है तुम्हारे पिता लड़के की तलाश में हैं।

शीशी—पिता हुआ करे मैं तो नहीं हूँ। और फिर इसका फिक्र तुम जैसियों को हो सकता है मुझे नहीं।

खरला—क्यों?

शीशी—कि मैं बदसूरती की ढाल रखती हूँ अपने पास, जिस पर ऊँचे २ बडे २ दांतों के चार चांद लगे हैं। अव्वल तो आते ही ऐसे वैसे मर्द की आँखें मुझ पर टिक नहीं सकती। अरे मर्दों की शिकार तो पतली दुबली सुन्दर औरतें होती हैं!

खरला—तब तुम क्या करोगी जीवन भर?

शीशी—गोबर बीनूँगी और अखाड़े में डण्ड लगाऊँगी।

खरला—अरे डण्ड क्यों, तुम तो पहले ही मोटी हो जो?

शीशी—चल कलमुही, मोटी हूँ तो क्या तेरे कहने को। अरी मैं तो चाहती हूँ मैं इतनी मोटी हो जाऊँ कि दुनियाँ को ढक लूँ। दुनियाँ मेरी ही साया में रहे। (कान के पास जाकर कहने का भाव) सुना?

खरला—अच्छा, तो क्या चाचा गये हैं। क्या डाक्टर को लेने।

शीशी—हाँ जब कभी वे मेरी श्याद़ी की बात करते हैं मैं साँग भर लेती हूँ—मूर्छित हो कर ऊटपटाँग बकने लगती हूँ। इसीलिये तो वे आज डाक्टर लेने गये हैं।

खरला—ऐसा न करो, करालो स्याद़ी !

शीशी—तो आपही दूसरी करालो अगर इतना शौक है। मुझे तो क्षमा करो सरकार !

खरला—आखिर क्यों करती हो ऐसा ?

शीशी—चाचा तो मुझे निकालना चाहते हैं, पर मैं जानती हूँ इस चोखटे की कदर तो कोई करेगा नहीं—स्याद़ी करना न करना बेकार है

(बाहर से पुकारने की आवाज 'दरवाजा खोलो,)

खरला—कौन है ?

शीशी—मेरा छोटा भाई पतङ्ग प्रिय। उसने भी आजन्म ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया है मेरी ही तरह।

खरला—क्यों ?

शीशी—यों कि उसके भी एक आँख नहीं है।

(पुनः दरवाजा खोलो)

शीशी—पतङ्ग प्रिय ! आई (दरवाजा खोलकर)

पतङ्ग—(प्रवेश) बहन ये कौन हैं ?

शीशी—यह मेरी साथिनी हैं।

पतङ्ग—तो मैं भी फिर इनका साथी हो गया। आओ मेरी साथिन तुम्हें देखूँ (मुंह देखता है) ओ यह क्या, तुम कैसी बेवकूफ हो ?

शीशी—अरे यह क्या कहता है ?

पतङ्ग—सच कहता हूँ—इन्होंने मुझे गले भी नहीं लगाया फिर यह कैसी साथिनी है। नहीं, न यह मेरी साथिनी है न तुम्हारी। तुम्हारा साथी वही होगा जो मेरी साथिनी बनेगा हम दोनों बहन भाई हैं—हमारा साथी भी एक ही होगा।

शीशी—अरे मूर्ख ! औरत का साथी औरत ही होता है और मर्द का मर्द।

पतङ्ग—तब हर्ज ही क्या है, मेरे पास वह मर्द हो जायगा और तुम्हारे पास औरत। औरत बन कर आने पर उसे मैं न आने दूँगा और मर्द बन कर आने पर तुम मत आने देना। और मुझे तो वह औरत रहे या मर्द कुछ परवाह नहीं है क्यों कि मैं तो उसे सदा एक ही आंख से देखूंगा जैसा वह मुझे पहली बार दीखेगा जन्म भर उसे वैसे ही देखता रहूँगा। इसलिये तुम मुझे उसे पहिले मर्द कह कर दिखला देना—बस फिर चाहे वह औरत ही क्यों न हो मेरे लिये तो मर्द ही है। डर तो तुम्हारा है लेकिन·····

शीशी—हाँ; बात तो यही है फिर मर्द कह देने पर तो वह औरत मर्द बन जाती है—मैं उसे वापस औरत कैसे बनाऊँगी ? (खरला से) बहन तुम जाना नहीं। हम दोनों तुम्हीं को साथी बनायेंगे। पहिले हम किसी चतुर से यह पूछ आवें कि हम औरत मर्द को एक कैसे बना सकते हैं ?

सरला —(स्वगत) भगवान् अच्छे मूर्खों से पाला पड़ा, मैं तो जरासा भैंस का गोबर लेने आई थी अब क्या करूं ?

शीशी—भैया चलो फिर इन्हें जाने में देर न होगी।

सरला—मैं पीछे आजाऊँगी। मुझे घर काम है।

शीशी—नहीं जी, हम अभी आये (किवाड़ों में सरला को बन्द करके दोनों चले जाते हैं)

दृश्य दूसरा

स्थान—बाजार

(शीशी और पतङ्ग प्रिय बड़े गम्भीर बने जा रहे हैं मार्ग में एक ठेले से टक्कर हो जाती है)

ठेलेवाला—अबे अंधे हो क्या उल्लू की औलाद !

घेवरदास—(पीछे से आकर ठेलेवाले के सिर में देता है) क्यों बे उल्लू की औलाद किसे कहता है ?

ठेलेवाला—क्या आप ही के हैं ये बच्चे ? मैंने यह जान कर उल्लू नहीं कहा ?

पतङ्ग—हाँ., देखता नहीं, चाचा जी क्या उल्लू हैं ?

ठेलेवाला—नहीं भैया उल्लू तो मैं हूँ।

शीशी—क्यों बे पाजी फिर वही गुस्ताखी, तू तो हमारा भी बाप बनना चाहता है।

ठेलेवाला—बाबा, आफत क्या है किसी तरह पीछा भी छोड़ोगे, अच्छा कांटों से उलझा ! मैंने यह कब कहा कि मैं तुम्हारा बाप हूँ।

घेवर—अभी २ कहा न उल्लू की औलाद और अब उल्लू भी खुद ही बनता है। अब तू उल्लू कैसे बन सकता है।

पतङ्ग—नहीं अब तू उल्लू नहीं बन सकता अब तो चाचा जी ही रहेंगे उल्लू।

घेवर—हाँ अब तो मैं ही हूँ उल्लू क्यों कि ये मेरी ही औलाद हैं।

(पुलिस कान्स्टेबिल आकर डांट के साथ)

सिपाही—अबे उल्लू हो जो बाजार में भीड़ इकट्ठी कर रखी है चलो सरको। कौन है यह उल्लू जिसने भीड लगाई है।

पतङ्ग—(चाचा की तरफ) ये हैं, सरकार।

शीशी—यही हैं सरकार।

चाचा—मैं ही हूँ सरकार।

सिपाही—तब क्यों न तुम्हारा आम रास्ता रोकने के कसूर में चालान कर दिया जाय ? क्यों मुफ्त की खाना चाहते हो क्या ?

शीशी—(चाचा से) चाचा, कहदो कहदो, मुफ्त में मिलेगी फिर क्या ?

चाचा—(जल्दी से) हाँ, सरकार हम तो तीनों कुसूरदार हैं—चलिये मुफ्त की किधर मिलेगी।

सिपाही—तुम तो बडे गुस्ताख हो। अच्छा तो चलो मैं तुम्हें अब छोड़ने वाला भी नहीं।

(सब का सिपाही के साथ प्रस्थान)

पतङ्ग—नहीं, भूलती हो क्या ?

शीशी—हाँ हाँ उलटा कह गई। अजी मुझे चाहिये स्त्री साथिनी और इसे चाहिये पुरुष दोस्त।

घेवरदास—अरे इसमें कौन बड़ी उलझन है। इस औरत को एक तरफ से मर्द बना पोत दो और दूसरी तरफ औरत ही रहने दो। अब जब पतङ्ग देखे मर्द वाला हिस्सा देखे और तुम देखो जनाना हिस्सा देखो—कभी लड़ाई न होगी। दोनों का काम निकल जायगा, क्यों ठीक है न ?

दोनों—(मिल कर) ठीक ठीक—बिल्कुल ठीक।

शीशी—तो सिपाही जी आवें तब तक हम चलो यही करलें।

(सब का प्रस्थान)

दृश्य चौथा

स्थान—घेवरदास का मकान।

(तीनों बाप बेटी जाकर एक ध्वनि से)

इधर आओ जी !

खरला—घबरा कर क्यों ?

शीशी—डरो मत हमें तरकीब सूझ गई। आज से तुम औरत भी हो और मर्द भी।

खरला—शीशी, मुझे तुम्हारी मूर्खता का पता न था कि तुम इतनी मूर्ख हो, क्षमा करो मुझे जाने दो बाबा !

शीशी—ऐसा न कहो, तुम तो मेरी साथिनी और पतङ्ग के साथी हो। तो (तीनों पकड़ कर उसे रंगते हैं: एक ओर मूछें, दाढ़ी और कल्में बना लेते हैं और दूसरी तरफ खाली छोड़ देते हैं)

खरला—अरे क्यों मेरे प्राण लेते हो।

शीशी—प्राण नहीं लेते तुम्हारा दिल लेना चाहते हैं।

(एक तरफ से शीशी और एक तरफ से पतङ्ग उसे देख देख कर प्रसन्न होते हैं और प्यार करते हैं)

पुलिसमेन—(प्रवेश) घेवरदास कौन है ?

घेवरदास—मैं हूँ।

पतङ्ग—जी नहीं यह तो उल्लू है।

सिपाही—चुप रहो।

शीशी—पर आप तो बदल गये पहले वाले नहीं।

घेवरदास—पहले वाले तो पिसाब करने गये हैं-आते ही होंगे।

सिपाही—पागल तो नहीं हैं आप लोग।

शीशी—यह क्या बकते हैं आप, लोग किसे कहते हो, हम ?॥ औरत भी तो हैं।

सिपाही—तुम लोगों ने........

शीशी—फिर लोगों ने कहा—

सिपाही—खैर तुम सब पर खरला को हवालेजा में रखने का अपराध है, तुम्हें सजा होगी।

शीशी—अररर ! सजा।

पतङ्ग—अरे उस पहिले वाले सिपाही को तो आने दो हम तो उसके साथ ही जावेंगे—तुम्हारे साथ नहीं।

सिपाही--(डाट कर) चलो।

सारे--(एक स्वर में) चलिये--

पतङ्ग—(खरला के मर्द भाग से चिपक कर) मेरे दोस्त तुम्हें न छोड़ूँगा।

शीशी--(दूसरी तरफ चिपक कर) मेरी बहन तुम्हें कहां छोड़ूँ।

सिपाही--(स्वगत) मालुम होता है, इन्हें पागल खाने में भेजना पड़ेगा (सब को आगे करके ले जाना चाहता है।

खरला--पर मुझे तो छोड़ दो।

सिपाही--अभी तो चलो वहाँ से आजाना।

खरला का पति--(प्रवेश) मेरी औरत यह खरला ही मूर्ख है, वरना इतनी झंझट ही न होती। इस से अच्छा यह होता कि एक दिन मर्दाने कपड़े पहन कर मर्द बन जाती और एक दिन जनाने कपड़े पहन कर औरत।

खरला--मुझे तो पहले न सूझी नहीं तो मैं पहिले ही कह देती इन्हें मेरे स्वामी !

(सब का प्रस्थान)

पटाक्षेप

स्वामी-भक्त पन्ना

पात्र परिचय

पुरुष

बनवीर	—	चित्तौड़ का स्थानापन्न शासक और पन्ना के पुत्र का घाती ।
सेवक	—	पन्ना का विश्वासपात्र महलों का एक दास

स्त्री

पन्ना	—	स्वामीभक्त धाय
चम्पा	—	पन्ना की अन्तरङ्गिनी दासी

स्थान—मेवाड़

समय—१५वीं शताब्दी का पूर्व मध्यकाल

कथाप्रसंग

बात यों है कि मेवाड़ का असली शासक बालक उदयसिंह अभी बच्चा है। इसलिये वह पन्ना धाय की देख रेख में है। मेवाड़ के सिंहासन का निगरां एक दासीपुत्र है! उसका नाम है बनवीर। बनवीर किसी प्रकार उदयसिंह की हत्या करके मेवाड़ का ताज व तख्त सदा के लिये अपना बनाने की धुन में है इसी कथानक को लेकर इस नाटक का कलेवर रचा गया है। इसमें चित्तौड़ की अतीत गाथा का वह चित्र जिसमें पन्ना-प्रसङ्ग आता है, जब हमारी आँखों से गुजरता है, पन्ना के न होते हुए, इतने दिन बाद भी भुजाओं को फड़का देता है, हृदय को पिघला देता है, और सूखी नसों में एक बार पुनः उष्ण रक्त का संचार कर देता है। चितोड़ और उसकी वीर पुत्रियों का आदर्श पन्ना के कठोर व्रत को झलक से एक बार पुनर्जिवित हो जाता है।

जहाँ धन और स्वार्थ के कारण अच्छे-अच्छे लोगों को फिसलते देखा है वहाँ चित्तौड़ के राजमहल के टुकड़ों से पली पन्नादासी का देश के कल्याण के लिये अपने हृदय के टुकड़े अपने ही पुत्र का वध करवा देना, और फिर उसे चुपचाप सह-लेना, जरा हृदय थामकर सोचिये, कितना कठोर त्याग था। आज चित्तौड़ भारत का मुकुट क्यों है, पन्ना और पन्ना जैसी अन्य वीर महिलाओं के बल पर ही।

स्वामी भक्त पन्ना

दृश्य पहिला

स्थान—मेवाड़ के राज महल का एक भाग।

(पन्ना उदय सिंह के पलने के पास बैठी २ गा-गा कर खिला रही है)

गायन

उजड़े हुए चमन की शोभा,
बिगड़े हुए सदन के सार।
तुझ में ही अटकी है आशा
मेवाड़ी नौ के पतवार।
उखड़े हुए विशाल वृक्ष को
कोमल कोपल के मृदुतार
कभी न तुमको छूने पाये
अरि कुदृष्टि का वारि-बयार।

(बच्चे को उछाल कर) मेवाड़ की भावी आशा! किसे पता था शीशोदिया वंश में आज तुम्हें छोड़ इस सिंहासन का रक्षक और कोई न रह जायगा! (चूमकर) मेरी आँखों के तारे! बोलो बोलो, इन छोटे-छोटे हाथों को मैं तलवार लिये कब देखूँगी, तुम्हारे घोड़े के टापों की ध्वनि से मेवाड़ी पर्वतमालाओं की

पन्ना—

तुम्हारी तल्वारों में रणचण्डी का वास।
सोजाओ सोजाओ वीरो, अभी न इनको प्यास।
रण में जब ये चमचमायेंगी शत्रुमय कर ग्रास।
मातृभूमि तुमको निरावेगी वीरो सहित हुलास!

(सहसा वहीं दास घबराया हुआ आकर)

दास—पन्ना, पन्ना, गजब हो गया! बनवीर आ गया। वह भूखा बाघ उदयसिंह के खून का प्यासा है। हो सके मेवाड़ की धरोहड़ की रक्षा करो, अब वह महल में आना ही चाहता है (पन्ना के पांवों पड़ कर) बोलो बोलो मैं तुम्हारा क्या सहयोग दे सकता हूँ मेवाड़ की इस एक मात्र विभूती की रक्षा के लिए।

पन्ना—भैया, दादा! (ज़रा सोचकर) मैं भी तो मां हूँ, मेरे भी आंचल है, आँचल में दूध है, दूध में उबाल है, मेरी भी यह एक ही लाल है। हाय कैसा धर्म संकट आया है। इधर कुआ है उधर खाई है। उदयसिंह का खून, ओह हत्यारे बनवीर!

दास—माजी! इस वक्त इतना सोच विचार करना खतरे से खाली नहीं। जल्दी बोलो मैं क्या करू ?

पन्ना—तुम, तुम, तुम लेजाओ इस फलों के टोकरे में रख कर उदयसिंह को कहीं (पगली सी होकर) और मैं बनाती हूँ

अपने लख्ते जिगर के लिये यहीं बैठ कर बलिवेदी।
(बाल नोंच कर आगे निकाल कर दरवाजे की ओर लपकती है)
हत्यारे बनवीर आ।

दास—पन्ना माजी ?

पन्ना—(लौटकर हाँ, तुम ले जाओ उदयसिंह को।

दास—कहाँ ? नवाब के यहाँ ?

पन्ना—(आश्चर्य और भय से भाव परिवर्तन पूर्वक) क्या कोई सामन्त तैयार नहीं ?

दास—नहीं !

पन्ना—वाह रे नमक हरामियों ! अच्छा तो क्या नवाब ने स्वीकार कर लिया इस काम को ?

दास—हाँ, आपकी चिट्ठी का जवाब जो चम्पा मेरे पास लेकर गई थी उसमें उन्होंने शाफ २ लिख दिया है कि उन्हें बनवीर की परवाह नहीं। वे उदयसिंह को सहर्प रख लेंगे।

पन्ना—तो जल्दी करो ले जाओ उदय को।

(उदयसिंह को लेकर दास का प्रस्थान)

बनवीर—(प्रवेश) पन्ना कहाँ है उदयसिंह ?

पन्ना—(हृदय पर वात्सल्य का बलिदान देकर) बनवीर !

बनवीर—बोलो-बोलो जवाब दो।

पन्ना—(अपने बालक की तरफ संकेत करके मूर्छित हो जाती है)

बनवीर—(पलने से बालक को घसीट कर टुकड़े २ कर देता है)

पटाक्षेप

योगी और भक्त

पात्र-परिचय

पुरुष

भक्त अम्बरीष	—	एक वैष्णव महाराज
मणिकान्त	—	महाराज अम्बरीष के भाई
महर्षि दुर्वासा	—	योगीराज किन्तु क्रोधी
महाराज	—	नाभाग अम्बरीष के पिता

स्थान—अयोध्या (कौशल)

समय—त्रेतायुग

कथा-प्रसंग

अम्बरीष भक्त थे। मणिकान्त धूर्त, ऐयास और छली। महाराज नाभाग अपने बड़े पुत्र अम्बरीष को चाहते थे। मणिकान्त को यह बात अखर गई वह रुपये से; बल से और नीति से सिंहासन हड़पने की चेष्टा में लग गया। आखिर उसे तरकीब सूझी और उसने दुर्वासा मुनी को अम्बरीष के विरुद्ध भड़काया—दुर्वासा विना विचारे प्रकुपित होकर अम्बरीष को शाप देने चले गये। परन्तु भक्त के लिये तो भगवान हर जगह आगे से आगे ही रहते हैं—तुरन्त सुदर्शन को आज्ञा मिलती है भक्त की रक्षा करो—बस, अब क्या है दुर्वासा तीनों लोकों में भटक फिरे पर उनकी सुदर्शन से रक्षा किसी ने न की। आखिर उन्हें भक्त के पास आकर क्षमा चाहनी ही पड़ी। मणिकान्त भी अपनी करणी पर पछताने लगा। और नेकी के रास्ते लग गया। महाराज अम्बरीष अब भक्त वर अम्बरीष के नाम से राज सिंहासन पर बैठकर प्रजा-वत्सलता का आदर्श नीभाने लगे।

प्रजा वत्सल भक्त अम्बरीष

दृश्य—पहिला

स्थान—अयोध्या के राज महल

(अम्बरीष का सहोदर भाई मणिकान्त महर्षि दुर्वासा से भेट करता है)

मणिकान्त—(सामने देख कर) भई वाह ! आज तो खूब बाँई मना कर चला। अब पौ बारह हैं। देखलूँगा अब अम्बरीष कैसे राजा बनता है ? यह पांवों चलती आग आ रही है। अभी इसमें घी डालकर भडकाता हूँ (अपने को सीधा साधु सा बनाता है इतने में महर्षि दुर्वासा प्रवेश करते हैं। मणिकांत चीता चोर कमान का उदाहरण बनके नीचा हो कर) महर्षिवर दण्डवत प्रणाम (एक दीर्घ स्वांस लेता है)

दुर्वासा—वत्स कुशल हो। (मणिकांत के मुख की तरफ देख कर) क्यों आज इतनी उदासी क्यों है ? राज परिवार में तो आनन्द है ?

मणि—हाँ महाराज कुशल तो है........

दुर्वासा—तब दूसरा क्या कारण ?

मणि—कुछ नहीं ऋषिराज।

दुर्वासा—आखिर ?

मणि—महर्षे ! मैं नहीं चाहता मेरा भाई आपकी क्रोधाग्नी का भुनगा बने।

दुर्वासा—तो क्या अम्बरीष का जिक्र है ?

मणि—हाँ महाराज, आजकल वे बड़े ऊँचे दर्जे के भक्त माने जाने लगे हैं ! इसी से उन्हें घमण्ड हो गया है—वे अब तप और तपस्वियों को तो कुछ समझते ही नहीं हैं उन्हें तो भक्ति ही भक्ति की बातें आती हैं।

दुर्वासा—हूँ, अच्छा देखता हूँ उस अभिमानी को, तपस्वियों का अपमान उसे नष्ट कर देगा। समझते हो ?

मणिकान्त—हाँ महाराज भला तपस्वियों को क्या मुश्किल ऐसे धूर्तों का सर्व नाश कर देना। किन्तु.......

दुर्वासा—किन्तु कुछ नहीं बस अब दुर्वासा पहिले यही निर्णय करेगा कि भक्ति बड़ी है अथवा तप जाता हूँ। धूर्त शिरोमणि अम्बरीष के पास देखता हूँ उसका भक्ति बल कैसा है जिसके पीछे वह तपस्या को तुच्छ समझ कर तपस्वियों का अपमान कर रहा है (प्रस्थान)

मणिकान्त—वह मारा ! तीर तो निशाने पर ही लगा है। अब देखना है शिकार होगा या नहीं। अम्बरीष भी याद रखेगा कि मणिकान्त भी कोई वस्तु है। (कुछ सोचकर) अच्छा यह तो हुआ। अब सोचना यह है कि आगे क्या करना है। (प्रस्थान)

दृश्य दूसरा

स्थान—अम्बरीष का पूजागार

'(बैठे हुए भगवान का भजन कीर्तन कर रहे हैं)

भजन—

हरि भज लें मन मेरे ?
हरि भज हरि भज हरि भज रे !
हरि भज हरि भज सांझ सवेरे !
बिन हरि कोइ न संग संगाती
दुनियां है यह आती जाती,
बिन हरि कौन निबेरे !

दुर्वासा—(सहसा क्रोध में लाल प्रवेश करते है। महाराज खड़े होकर हाथ जोड़ते हैं) ढोंगी, पामर, हाथ जोड़ने से क्या होता है संभाल तपस्वी का शाप (हाथ में पानी लेते हैं)

अम्बरीष—(विनीत भाव से) ऋषिराज, क्षमा, क्षमा, आखिर मेरा अपराध तो बतलाइये ?

दुर्वासा—अपराध ? अपराध यह शाप तुझे स्वयं ही बतलायेगा, जहाँ तुम्हारी आंखों से भक्ति का नशा उतरा नहीं कि खुद व खुद पता चल जायेगा कि वह अपराध क्या था जिसका यह दण्ड।

अम्बरीष—(घुटने टिकाकर हाथ जोडता है और विनय करता है)
भगवान तुम्हें मेरी चिन्ता, मैं मूर्ख और अज्ञानी हूँ।
मेरे अनजाने जाने सब पापों की स्वयं कहानी हूँ।

दीनानाथ ! मेरा अपराध चित न धरो । हम से सदैव अपराध ही बनते हैं—और आप दीन वत्सल उन्हें धुला ही दिया करते हैं, भगवान हमारे साथ आपके अनन्त उपकार है—मेरे पिता मेरी रक्षा करो।

दुर्वासा—(क्रोध में) अम्बरीष संभलो (पानी छोड़ना चाहता है कि भगवान का सुदर्शन चक्र भक्त को सहायतार्थ आ जाता है दुर्वासा व्याकुल होते है)

दृश्य तीसरा

मणिकान्त—अरे ! यह तो उलटा गजब हो गया । ऐसा न हो कहीं दुर्वासा मुझ पर क्रुद्ध हो जांय । अम्बरीप तो सचमुच भक्त है, उसकी रक्षा तो भगवान भी कर लेंगे परन्तु मैं जो भक्त विरोध करता हूँ महर्षि के क्रोध का शिकार अवश्य बन जाऊँगा।

सचिव—(प्रवेश) सरकार !

मणिकान्त—कहो क्या हुआ ? मिले हमें कुछ मत।

सचिव—राजकुमार ! प्रजा को धन का लोभ नहीं, वह चाहती हैं अच्छा नेता । महाराज नाभाग ने यह प्रश्न प्रजा की अभिरुचि पर छोड़ दिया है । प्रजा चाहे जिस लड़के को अपना नेता चुन सकती है । महाराज ने कुमार अम्बरीप और आपके लिये विज्ञप्ति में कोई खास अन्तर नहीं बतलाया।

मणिकांत—तो अब ?

सचिव—अब कुछ नहीं, बहुमत की विजय निश्चित है।

मणिकान्त—तब उस बहुमत के लिये मैं तुम कहो जितना धन दे सकता हूँ पर किसी प्रकार........

सचिव—सो नहीं, कुमार! बहुमत रुपये से नहीं खरीदा जा सकता। उसके लिये तो सच्चरित्रता, न्यायपरायणता, प्रजाहित, देश व समाज की चिन्ता आदि अमूल्य गुण हैं। आया ध्यान में ?

मणिकान्त—तब तो शायद अम्बरीप का ही पहिला मौका है चुने जाने का।

सचिव—प्रतीत तो ऐसा ही होता है, राजकुमार!

मणिकान्त—यदि प्रजा हित का कोई अनुष्ठान मैं अब करूँ ?

सचिव—लोग उसे धोखा समझेंगे, कारण, आपके विषय में प्रजा के विचार पहिले से ही दूसरे बन चुके हैं।

मणिकान्त—(उदास भाव से) तब आज मैं इस देश को अपनी जन्म भू को नमस्कार करता हूँ और अपने पापों का प्रायश्चित किसी ऐसे निर्जन स्थान पर जाकर करूँगा जहाँ मेरी मृत देह का भी लोग मुँह न देख सकें—सचमुच मैं स्वार्थी, पापी, पाखण्डी और भगवत् द्रोही हूँ—मुझे इसी तरह मरना चाहिये।

(प्रस्थान)

सचिव—कुमार ! कुमार !! चले गये ओह महारानी सुकेशी को क्या उत्तर दूँगा । (प्रस्थान)

दृश्य चौथा

स्थान—रुद्रलोक

(भगवान शङ्कर सपरिवार मृगचर्म पर आसीन हैं ।)

दुर्वासा—(व्याकुल भाव से) नाथ आशुतोष भगवान्, दया करो, मुझे एक क्षण इस सुदर्शन असह्य ताप से मुक्त कीजिए, मैं मरा विश्वम्भर ।

शङ्कर—महर्षिवर्य ! यह सुदर्शन इस समय मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर सकेगा । क्योंकि भक्त अम्बरीष न केवल भक्त ही है, बल्कि सच्चे प्रजावत्सल भी हैं—समस्त प्रजा की शुभ भावना सुदर्शन के एक-एक कंगूरे में सहस्रधा होकर इसके तेजोमय ताप को शतधा कर रहा है । भला ऐसे भक्त का विरोध तो स्वयं भगवान भी नहीं कर सकते । महर्षि मैं असमर्थ हूँ । ब्रह्मा के पास पधारिये संभवतः वे कुछ कर सकें ।

दृश्य पांचवां

स्थान—ब्रह्मलोक

(ब्रह्मा कमण्डल राखे वेदाभ्यास कर रहे हैं, पास में गायत्री सावित्री बैठी हैं - हँस अपनी दिव्य छटा छिटकाता इधर-उधर विचर रहा है)

दुर्वासा—विधाता ! जगन्नियन्ता !! मुझे बचाइये, शरणागत हूँ। एक क्षण इस चक्र की कराल ज्वालमाला से मुक्ति दिलाइये।

ब्रह्मा—महर्षि ! यह कार्य मुझसे संभव नहीं। प्रजा वत्सल राजा का तेज कहीं प्रतिहत नहीं होता। जिसमें तो अम्बरीष एक सच्चे भगवद्भक्त भी हैं। भगवान भक्त की टेक रखते हैं। भला यह कैसे हो सकता है कि मैं भक्त की बात खोदूँ तुम्हें यदि अपने प्राण प्रिय हैं तो स्वयं विष्णु के पास पहुँचो वे ही तुम्हारी रक्षा कर सकेंगे, दूसरा नहीं !

दृश्य छठा

स्थान—विष्णु-लोक

(भगवान शेषशायी के दर्शन होते हैं। दुर्वासा व्याकुल अवस्था में प्रवेश करते हैं।)

दुर्वासा—नाथ ! त्रिलोकपति, दयाकरो, अपनी माया समेटो, दीनानाथ इस अपने चक्र को समझाइये, नहीं अब मैं मरा। अब मुझ में शक्ति नहीं इसका ताप सहे जाने की कृपालो !

विष्णु भगवान—(हँस कर) महर्षि वर ! यह भक्त के अपमान का दण्ड है। आपको भक्त के ही पास जा कर क्षमा मांगनी होगी और वही आपको क्षमा कर देगा तब

यह आपको छोड़ सकेगा। मुझे तो वे लोग प्यारे हैं जो जनता जनार्दन को पूजते हैं, दीन दुखियाओं के लिये तरस खाते हैं—संसार में मुझे ही देख कर संसार से प्यार करते हैं! अम्बरीप इसी प्रकार का भक्त है। मैं उसके लिये असंभव से असंभव काम कर सकता हूँ। इसलिये आप अम्बरीष के पास ही जाकर क्षमा चाहें—सुदर्शन तत्काल आपका पीछा छोड़ देगा।

दुर्वासा—जय हो अखिल लोक नायक! सचमुच घमण्ड का सिर नीचा। (स्वगत) अपने दर्प का दण्ड सहो।

(प्रस्थान)

दृश्य सातवाँ

स्थान—महाराज अम्बरीष का पूजागार

(अम्बरीष भगवान की विनय करते हुए महर्षि की तकलीफों पर आँसू गिरा रहे हैं)

राजा—भक्तवत्सल! महर्षि को क्षमा करो। मेरे कारण उस महात्मा को कष्ट पहुँचा है; मेरा कैसे भला होगा नाथ!

दुर्वासा—(प्रवेश) राजन्! (पाँव पकड़ना चाहता है)

राजा—(पीछे हट कर) हैं, यह क्या महाराज, हम जैसे तुच्छ सेवकों पर इतना ज़ुल्म! आज्ञा दीजिए मैं क्या करूँ?

दुर्वासा—पहिले इस चक्र को निवारण करो। अब मैं खूब समझ गया कि भक्ति बड़ी है—भगवान् न जप के हैं न तप के, वे तो विशुद्ध प्रेम के पीछे बंधे रहते हैं। भगवान् को तो हृदय की सचावट पसन्द है, महाराज, भक्ति एक जबरदस्त तप है—सचमुच मैं भूला हुआ था। आज मेरा नशा उतर गया। मैंने आपका तिरस्कार किया उसका फल मैं भोग चुका हूँ—अब दया करो, मुझे क्षमा करो।

राजा—ऋषिवर! ऐसा न कहें। हम तो आप लोगों के दास हैं। भगवान् दयालु हैं—दीनानाथ हैं उन्हें सब कुछ शोभा देता है। मेरे नाथ आपकी इस असीम दया के लिये अम्बरीष आभारी है।

दुर्वासा—राजन्, बोलो बोलो क्षमा किया या नहीं?

राजा—भगवान्! दयालो!! दीनानाथ!!! महर्षि को क्षमा कीजिये। और महर्षिवर्य! आप मुझको क्षमा कीजिये, मेरे कारण आपको इतना श्रम उठाना पड़ा।

दुर्वासा—सो नहीं, यह सब मेरे स्वयं के कर्मों का विपाक है। खोटी संगति मनुष्य को अवश्य रसातल तक पहुंचाती है। न मैं मणिकान्त की सीख मानता न यह अकाण्ड ताण्डव होता। (अम्बरीष के पुनः चरण छूना चाहते हैं, अम्बरीष ऋषि को रोक कर खुद उनके चरण पकड़ लेते हैं और—

गायन--

जय हो उसकी जिसने अपनी माया का विस्तार किया।
प्रेम नाम के आकर्षण से रहा वही जहाँ याद किया।
जल,थल,नभ और अनिल अनलमें व्यापक है जो लीलासे।
शून्य चक्रमें अखिल विश्वको निराधार आधार किया!
हम सब में जो झलक रहा है अति सुन्दर परिछाई सा!
उसी देव को भूला मूढ़ मन क्यों तूने अपकार किया!

(हाथ जोड़ कर) नाथ!

तेरी स्मृति हो, आघातों से छाती छिलती रहे सदा।
चाहे तू न मिले, पर तेरी आहट मिलती रहे सदा।

पटाक्षेप।

———

केवल आन के लिये

पात्र परिचय

पुरुष

महराव	—	मंडूर के स्वामी
चन्द्र (चंद)	—	मेवाड के युवराज
राघव (रघु)	—	चंड के छोटे भाई
रणमल	—	राठौर मंडूरका युवराज
सैनिक गण		
हरिसिंह	—	चंड का साथी, एक सामंत

स्त्री

तारा	—	मंडूर की महारानी
हंसा	—	मेवाड़ की छोटी रानी मुकुल की माँ
भारमली	—	एक गायिका और दासी
दासियाँ	—	२

समय—१६वीं शताब्दि

स्थान—मंडूर और चित्तौड़गढ़

दृश्य पहिला

स्थान—मंडूर का राज महल

(मंडूर की महारानी अपने उद्यान में आराम से बैठी है, दासियाँ सेवा में खडी हैं—गायिकाएँ सितार बजा रही हैं। राव चूडावत विचार-विमूढ़ से आते हैं। हाथ में एक पत्र जिस पर आँखें गड़ी हैं। मय रानी के सब राव साहब का उचित अभिवादन करती हैं)

(दासियाँ, महाराज का मनोभाव समझ कर चली जाती हैं)

समय—रात

रानी—खिले हुए फूल पर यह पाला कैसे गिर रहा है महाराज ? यह सूखा सूखा मुखड़ा, ये धँसी धँसी आँखें किस अघटित घटना की मौन सूचना दे रहे हैं !

राव—यह एक पत्र है।

रानी—किसका ?

राव—रणमल का। इसे पढ कर मेरे चित में अशांति पैदा हो गई है। (कुछ विचार-शील सा हो कर दीर्घ स्वास लेता है) मेरे हृदय की क्या दशा है इस वक्त तुम नहीं समझ सकती प्रिये !

रानी—नाथ, आखिर कहिये तो, मैं तैयार हूँ आपके दुःख में हिस्सा बँटाने के लिये। क्या रणमल ने कुछ विद्रोहात्मक प्रसङ्ग लिखा है ? (उदास होकर) महाराज, भूल तो मुझ ही से हो गई—न मैं आपके बीच में बला बन कर आती और न आप पिता पुत्रों में यह मनोमालिन्य बढ़ता। कहीं बड़ी रानी की ईर्षा फिर से तो नहीं भड़क उठी ! लेकिन मेरा वश भी क्या था, आप ही बताइये मैं क्या करती ?

राव - नहीं, मैं तो तुम्हारा ऋणि हूँ तारा ! तुमने मेरे जीवन की सूखती हुई खेती के लिये शीतल पानी का सा काम किया है। बड़ी महारानी तो क्या, मैं त्रिलोकी के राज्य को तुम्हारे लिए निर्मम हो कर त्याग सकता हूँ। बात यह नहीं, बात है हँसा के सम्बन्ध की।

रानी—हँसा के सम्बन्ध की ?

राव—हाँ, रणमल चित्तौड़ में हंसा का सम्बन्ध करने के विरुद्ध है। वह लिखता है चित्तौड़ की परिस्थिति हँसा के विवाह के सम्बन्ध में बिगड़ उठी है। युवराज चंड इस विवाह को ठुकरा चुके हैं क्योंकि जब नारियल दरबार में पहुँचा तो कहीं राणा जी के मुँह से यह निकल गया कि —नारियल तो युवराज के लिये आया होगा, हम जैसे वृद्धों के लिये नारियल कौन भेजता है ? इस पर कुमार ने हँसा को 'माँ' कह कर राणा को नारियल मंजूर करने को बाध्य कर दिया।

रानी—यह तो परम प्रसन्नता की बात है, इसमें इतना रंज क्यों ?

राव—क्या कहा प्रिये ?

रानी—कि हँसा मेवाड़ की महारानी बने इससे बढ कर और क्या चाहिये मुझे। आप इसे दुर्भाग्य क्यों कहते हैं महाराज ?

राव—मैं ठीक कहता हूँ। हँसा चाहे मेवाड की महारानी न बने पर उसका सम्बन्ध किसी युवक के साथ हो इसी में मैं हँसा का हित मानता हूँ। भला इस तरह एक वृद्ध के हाथ देकर तो जान बूझ कर लड़की को कुए में धकेलना हुआ !

रानी—यह सब निःसार बातें हैं महाराज ! क्या आप देखते नहीं मेरे विवाह में कौन सी नीरसता रही । भला कहाँ आपकी आयु और कहाँ मेरी—उस समय दूणों से ज्यादा फर्क था हम लोगों की उम्रों में। और फिर हँसा एक क्षत्राणी है, पति चाहे मिट्टी का ही क्यों न हो-वह उसकी पूजा करेगी। महाराव ! मेरी लड़की मेवाड़ की धिरानी बने ऐसा ही कीजिए।

राव—परन्तु प्रश्न यह है यदि इसके पुत्र को मेवाड़ का सिंहासन न मिल सका तब, राजरानी होना न होना बराबर रहा न। (दासी प्रवेश करके)

दासी—अन्नदाता प्रधान मन्त्री ने यह पत्र दिया है और प्रार्थना की है कि यह अभी चित्तोड़ का राजदूत लाया है।

(राव साहब चिट्ठी खोल कर पढ़ते हैं।)

राव—लो यह पत्र भी आ गया।

रानी—क्या लिखा है, किसने लिखा है ?

राव—राणा के लिये हंसा की याचना की है युवराज ने।

रानी—तब आप न चूकिए अब शर्त लगा लीजिए कि यदि युवराज गद्दी का अधिकार छोड़ने की प्रतिज्ञा करें तो विवाह स्वीकृत है।

राव—यह तो ठीक कहा। पर इस प्रतिज्ञा का भरोसा ?

रानी—चण्ड की प्रचण्ड प्रतिज्ञा का खण्डन आज तक होते नहीं देखा महाराज, वे सारे देश में अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा के लिये प्रसिद्ध हैं। आप तुच्छ वहम न कीजिये, मेरी लड़की के सुख-सौभाग्य की उदय घटिका पर ठेस न मारिये। क्या रणमल ने आपको बहका कर अपनी सौतेली बहन से बदला लेने का यही अवसर सोच रखा था। महाराव मैं फिर कहती हूँ आप इस शुभ कार्य में शीघ्रता करें और इन पोच विचारों को छोड़ दें।

महराव—(उठकर जाते हुए) कौन कहता है मैं मंडूर की बागड़ोर थामे हुए हूँ। वह तो तुम्हारे हाथ में है रानी—मैं तो तुम्हारे हाथों की क्रीड़ा—पुत्तलिका हूँ। अच्छा करता हूँ इस नरमेध यज्ञ का आरम्भ। सच कहा है मनुष्य होनहार को कभी नहीं टाल सकता। (प्रस्थान)

दृश्य दूसरा

स्थान—चित्तौड़ के राज महल का एक भाग।

(महाराज लक्षसिंह के ज्येष्ठ पुत्र चण्ड और उनके कनिष्ठ भाई राघव सिंह में बातचीत हो रही है)

समय—प्रातःकाल

चंड—क्यों भाई, जब मैं भगवान्—एकलिंग को साक्षि करके सिंहासन स्वत्व छोड़ने की शपथ ले रहा था, तुम्हारे मुख पर उदासी क्यों नाच रही थी।

राघव—इसीलिये कि मुझे ये बातें पसन्द नहीं।

चंड—क्यों ?

राघव—इसलिये कि मुझे पंडितराज कीर्तिमान का कथन याद आ गया था। वे पहिले बतला चुके थे कि युवराज के ग्रह कुछ ऐसे हैं कि उन्हें सिंहासन त्याग देना पड़ेगा और मेवाड़ को एक बालक राणा के संचालन में भयङ्कर आपत्तिएँ झेलनी पड़ेंगी—इस सारी भविष्यवाणी का आज श्री एकलिङ्ग के मन्दिर में बीजारोपण हो ही गया।

चंड—(व्याकुलता का भाव दिखाते हैं) राघव तुमने मुझे आज हस्तिनापुर के इतिहास की स्मृति करा दी। भीष्म पितामह की भीषण प्रतिज्ञा यद्यपि व्यक्तिगत थी परन्तु उसका परिणाम समस्त राज्य तक व्यापक हो गया।

वहां की जनता पर आपत्तियों के पहाड़ टूटे, असंख्य जनता के जीवन-उद्यान पतझड़ की भेंट हो गए, भयंकर रक्तपात हुआ-संसार का नक़शा ही बदल गया । उफ़, यह सोचकर अवश्य ही मुझे बेचैनी होती है—परन्तु, अब इसका कोई उपचार नहीं । मत दिलाओ मुझे इस प्रतिज्ञा के परिणामों की याद—केवल याद दिलाओ मुझे मेरी प्रतिज्ञा और उसका आमरण निर्वाह ।

(उद्भ्रात साधु मकर एक ओर चला जाता है पीछे से राघवसिंह भी एक दीर्घ स्वांस ले कर निकल जाता है)

दृश्य तीसरा

स्थान—मेवाड़ का अन्तःपुर

(रानी हंसा अपने शयनागार में बैठी चंड की प्रतीक्षा कर रही है। चंड आता है)

समय—रात

हँसा—मैंने कितनी बार बुलाया युवराज, तुम्हें ?

चंड—माताजी, क्षमा करो, मुझे तो आज ही का पता है कि आपने याद किया है।

हँसा—(कंपित और डरे हुए स्वर में) उस दिन तो मैं तुमसे कुछ बात न कर सकी थी, मेरे हृदय में तुमसे कुछ मन की बातें करने की बहुत दिन से लगन थी-आज मैंने तुम्हें इसीलिये बुलाया है।

चंड़—मैं हाजिर हूँ माँ !

हँसा—युवराज !

चंड़—माँ !

हँसा—मुझे तुम्हारे मुँह से माँ सम्बोधन बुरा लगता है, तुम मुझे हँसा कह कर पुकारो।

चंड़—यह कैसे बन पड़ सकता है एक पुत्र से।

हँसा—तुम मेरी तरफ देखो युवराज, केवल एक बार तो देखो, धरती ही में निगाह क्यों गड़ाए हुए हो ?

चंड़—माता के चरण मुझे बड़े भले लगते हैं इसीलिये मैं चरणों में दृष्टि लगाये खड़ा हूँ—आज्ञा दो।

हँसा—युवराज !

चंड—माँ !

हँसा—तुम कहते होगे हँसा पगली है। पर मैं पगली नहीं, पगले तुम हो कदाचित ! युवराज, यह घृणा, ये लाल आँखें, ये उपेक्षा अच्छी नहीं। क्या नारी का कोई व्यक्तित्व ही नहीं, क्या उसकी कोई इज्जत ही नहीं, क्या नारी ठुकराने की वस्तु है। उसके भी हृदय है, हृदय में इच्छा नाचती है, इच्छा में फूट पड़ने की लालसा होती है—युवराज, समझे, ? उस वक्त········

चंड़—माँ, बस ! मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है, घृणा और तिरस्कार का कोई प्रश्न नहीं उठता।

सा—पर इस कर्तव्य-वेदी पर बली किसका चढ़ गया युवराज !

चंड—मेरे अधिकारों का।

हँसा—नहीं मेरी सुकोमल अभिलाषाओं का कि जिनका बलि देने का तुम्हें कोई अधिकार न था।

चंड—माँ—

हँसा—(शीघ्रता से) बस, युवराज मुझे माँ न कहो।

(दोनों हाथ चंड की ओर बढ़ाती है)

चंड—(हाथ झटक कर) खामोश, एक कदम भी आगे न बढ़ना। जो हाथ माँ की आज्ञा से धरातल को भी उलटने की तैयारी कर सकते हैं वे माँ की मर्यादा को धूल में मिलाने वाली माँ को भी छुरी भोंकने में हिचकिचाहट नहीं करेंगे।

हँसा—इतना गर्व चंड ? अच्छा, मेवाड़ की महारानी का इस तरह तिरस्कार !

चंड—मेवाड़ की रानी के नाम को कलंकित करने वाली देवी, यदि तुम शची भी होती तो इस समय मैं उस दशा में भी तुम्हारा गला घोंट देता। परन्तु·······(प्रस्थान)

हँसा—नारी, नारी, हाय रे निर्दयी पुरुष, पुरुष ! (भाव बदलता है) कर्तव्य की डींग मारने वाले मैं देखूँगी अब कर्तव्य ही तुम्हारी रक्षा करेगा ?

(उद्विग्न दशा में पलंग पर बैठती है)

पटाक्षेप

दृश्य चौथा

स्थान—रणमल का निवास स्थान

(रणमल अपने महल में बैठा हुआ हंसा का पत्र पढ़ चुकने के पश्चात्)

समय—मध्याह्न

रणमल—(स्वगत) क्या स्वर्ण अवसर आया है! महारानी हंसा ने यह पत्र नहीं भेजा है—बल्कि मेवाड़ का ताज भेजा है (पुनः पत्र पढता है) "इस देश में भाई मुझे तुमसे बढ कर किसका सहारा है। महाराणा ने गये युद्ध में यवनों को परास्त करने में सफलता पाई किन्तु वे वापस न लौटे। उन्हें वहीं वीर गति प्राप्त हो गई। भैया वे हमें छोड़ कर चले गये अन्धकार में, आंधी में, तूफान में........"

(पत्र पढना छोडकर रणमल प्रसन्नतापूर्वक)

रणमल—अभी क्या हुआ है? आंधी तो अब आयेगी, न जाने उसमें कौन कौन से वृक्ष गिरेंगे! (पुनः पत्र पढता है) अब मेरा भाग्य चंड और राघव के हाथ है। मुकुल तो बालक है, वास्तव में तो राजा ये दोनों कुमार ही हैं। क्या मैं तुमसे कुछ आशा रखूँ। भाई मैं मुकुल को तुम्हारे हाथ सौंपती हूँ। बहिन की यह मांग स्वीकार करो।"

रणमल—(प्रसन्नता पूर्वक) चंड वीर है किन्तु साथ ही भोला भी है ! हाँ राघव जरा चंट जरूर है। मुझे बदला भी राघव से ही लेना है उसने उस दिन मेरा बड़ा अपमान किया था। अच्छा पहिले यह देखता हूँ कि देखें हँसा बाई इस पत्र के उत्तर में उसे मैंने जो पत्र भेजा है क्या उत्तर देती है ?

दासी—(प्रवेश) अन्नदाता ! (पत्र देती है)

रणमल—क्या है ?

दासी—पत्र, वीरसिंह ने ला कर दिया है।

रणमल—(प्रसन्नता पूर्वक उठकर) अच्छा लाओ।

(दासी प्रणामान्तर चली जाती है)

रणमल—(पत्र खोलकर)

"प्यारे भाई ! तुम्हारी सब बातें स्वीकार है। चंड से सेना का अधिकार छीन कर तुम्हें दे दिया जावेगा। राघव को तुम्हारी आज्ञा माननी पड़ेगी। भारमली को तुम्हारी सेवा में रख दी जायगी। इसके अतिरिक्त मेवाड़ का सारा राज्य तुम्हारी मन्त्रणा के बल पर चलेगा। परन्तु तुम शीघ्र से शीघ्र इस कार्य को संभालो ! तुम्हारी दुखिया बहिन—हँसा।

रणमल—(प्रसन्नता पूर्वक) पहिले क्यों न इस खुशी में राग रंग मनाया जाय। चलूँ एक बार अपने विनोद-भवन में और बुलाऊँ पहिले उस भारमली को। (प्रस्थान)

दृश्य पाँचवाँ

स्थान—आबू के पास का जंगल

(चंड प्रमत्त की भाँति सूर्यास्त के समय इधर-उधर घूम रहे हैं। चित्त में बेचैनी की लहरें उठ रही हैं)

चंड—(स्वगत) सचमुच मैं ही हूँ मेवाड़ की दुर्दशा का कारण ! नहीं, मैं नहीं, माँ है, छोटी माँ है। मेरी आन मैंने निभाई, परन्तु माँ ने अपने हृदय में मुझे स्थान न देकर आज मेवाड़ की कमबख्ती स्वयं आमन्त्रित की है। भगवान् ! भास्कर ! यह विमल शीशोदिया वंश भी आज आपके साथ २ ही डूब जाने वाला है। परन्तु आप तो कल प्रातः काल अपनी तेजोमयी प्रभा के साथ पुनः उदित होंगे लेकिन मेवाड़ का सौभाग्य सूर्य भी क्या पुनः मेवाड़ के स्वतन्त्र आकाश की शोभा बढ़ा सकेगा ! एँ ! कौन दे रहा है मेरे प्रश्न का उत्तर ? हाँ, यानी होगा। अच्छा (प्रसन्नता का नाट्य) ठीक है बिगड़ना होता है बनने के लिये और बनाव होता है बिगाड़ के लिये। किन्तु

(सहसा घबड़ाया हुआ एक अश्वारोही आता है)

अश्वारोही—युवराज ! प्रणाम।

चंड—क्यों, इतनी विकलता का कारण ?

अश्वारोही—कुमार राघव की अकाल मृत्यु।

चंड—हैं ! मैं यह क्या सुन रहा हूँ। विक्रम मुझे संभालो। क्या केवल आन के लिये........(क्षणिक मूर्च्छा, अश्वारोही संभालता है)

अश्वारोही—युवराज ! आप अपने वीरोचित स्वभाव को अपनाइये। आगे क्या करना है इसके लिये योजना बनाइये। वह दुष्ट........

चंड—कौन ?

अश्वारोही—रणमल, अगला निशाना राणा को बनाने वाला है।

चंड—अरर ! तब तो अब मुझे माँ की आज्ञा का विरोध करना पड़ेगा।

अश्वारोही—नहीं, स्वयं माताजी ने आपकी सहायता चाही है। क्यों कि रणमल उन्हें भी बंदी बनाकर स्वयं सिंहासन लेने का यत्न कर रहा है।

चंड—(सोचकर) परन्तु, राघव, राघव, हा राघव मैं मेवाड़ में अब जाकर क्या देखूँगा। तुमसे खाली महल, एक सहोदर विहीन देश, आह सैनिक मुझे संभालो !

(पुनः मूर्च्छा नाट्य, सैनिक संभालता है)

पटाक्षेप

दृश्य छठा

स्थान—रणमल का उल्लास भवन।

(रणमल भारमली के साथ)

समय—अर्धनिशा

रणमल—भारमली ! भारमली—कहिये।

रणमल—अब तो यों कहा करिये महाराणा ! (आगे बढ़कर भारमली का हाथ पकड़ते हुए) कहे तो, इसी समय चित्तौड़ की राजगद्दी पर बैठ जाऊँ, मेवाड़ का सौभाग्य सिन्दूर बन जाऊँ ? ला प्याला पिला ।

(भारमली शराब भरकर देती है
रणमल पीता है)

रणमल—ओह, संसार की मादकता इकट्ठी हो कर भारमली आज तुम्हारे कोमल हाथों की शोभा बढ़ा रही है, हर प्याले में एक अजीब नशा, अनोखी मस्ती और विचित्र उन्माद है । लाओ पिलाओ, पिलाओ, रुको मत पिलाए जाओ, जब तक मैं तुम्हारे प्रेम के अगाध सुधा सागर में गोते न मारने लगूँ ।

(भारमली शराब देती है, रणमल पिये चला जाता है ।
और बेहोश होते होते........)

रणमल—भारमली, तूने तो राघव को अपना हृदय दे दिया था न ? परन्तु रणमल की हिम्मत भी देखी । सच है 'जिन खोजा तिन पाइयां, उस बिचारे को क्या पता था कि जिसे वह प्यार करता है वही उसकी मौत है । ला पिला, पिलाये जा ठहरने का काम नहीं ।

(पुनः भारमली शराब देती है
रणमल पीकर लेट रहता है)

मली—(रणमल को देखकर स्वगत) रे नर पिशाच, क्षत्रिय कुल कलंक, आज तेरा अन्त आगया मालूम होता है। मेवाड़ की बहू बेटियों के सतीत्व को होली जलाने वाले या: रख पाप का घड़ा फूटता ही है। अबला जनों की हाय न केवल तेरे उल्लास भवन को ही अपितु तेरे इस कलंकित कलेवर तक को नष्ट कर देगी। भारमली मेवाड़ की गायिका है, किन्तु वह भी है एक आर्य नारी! उसके पास हृदय है, हृदय में टीस है, टीस में मरने मारने की पुकार है। रावय मेरा सर्वस्व था। मैं जो कुछ हूँ रावय की हूँ—भारतीय वेश्या भी इतना आदर्श रखती है—अब भारमली एक भूखी सिंहनी है जो रणमल तेरा रक्त पी कर ही चैन लेगी। ओ देशद्रोही, राजद्रोही, कुल-द्रोही, ओ धर्म द्रोही। ले सँभाल—

(रणमल की पगड़ी से उसे बाँधती है और बगल से उसी का खंजर ले कर उसे मारना ही चाहती है)

(नेपथ्य में)

"जय एकलिंग नाथ की, जय हो महाराणा मोकल की, जय हो युवराज चंड की

भारमली—(चौंक कर) एँ! यह क्या, युवराज चंड ने माँ की प्रार्थना मान ली! वे आगए!! वाह रे क्षत्री वीर! वाह! आखिर माँ और मातृभूमि की मुसीबत पर पिघल ही उठे। सचमुच वीर का धर्म यही है कि वह दूसरे की तकलीफ में—अपने को भुलाकर भी—हाथ बँटा लें।

(सहसा रणमल के विलास भवन का किवाड़ टूटता है और सैनिकों के साथ एक सेना नायक भीतर आता है)

भारमली—(आगे बढ़कर) ठहरो।

नायक—क्यों ?

भारमली—मुझे स्त्री समाज के साथ जो अत्याचार इसने किये हैं उनका बदला पहिले ले लेने दो।

नायक—परन्तु देवी, पुरुषों के रहते तुम इस पर हाथ चलाओगी ?

भारमली—क्या डर है ?

(कह कर खंजर फेंक कर रणमल को मारती है; रणमल बेहोश हो कर खून से लथ पथ शिथिल हो जाता है)

सैनिकगण—(एक साथ प्रवेश करके) महाराणा की जय, महादेवी की जय ! युवराज की जय।

(रणमल की लाश के चारों तरफ खड़े हो जाते हैं)

हंसाबाई—(प्रवेश) अरे ! (लाश को देख कर) इसे किसने मारा ! भाई, भाई ! मुझे छोड़ गये, आखिर थे तो मेरे भाई भैया तुम चाहे कैसे ही क्यों न थे ? (रोती है, थोड़ी देरमें चारों ओर देखकर) कौन ? चंड, तुमने मार दिया है मेरे भाई को। चलो अच्छा हुआ। यह भी तुम्हारे मार्ग का कंटक था—दूर हुआ।

चंड—माँ, माँ ! चंड ऐसे वचन सुनने का आदि नहीं है। मुझे आपने बुलाया था, मैं आगया—अब चला जाऊंगा मुझे मेरे मार्ग के काँटे ही हटाने होते तो......

हँसा—तो,

चंड—तो मैंने यह आन न की होती। लो प्रणाम।

हँसा—चंड ! चंड !! चला गया। (जाता है)

(शव की ओर देख कर)

तुम मेरे भाई थे—चाहे तुमने भाई चारा नहीं निभाया—मेरे बच्चे की हत्या करना चाहते थे—पर मैं एक बहन की आत्मा से तुम्हारा बुरा नहीं चाहती थी। भाई, भाई... ...

(पछाड़ खाकर गिरती है)

दृश्य सातवां

स्थान—शिवमन्दिर और बगीचा

समय···सायंकाल

(युवराज चंड और हरिसिंह आपस में बातें कर रहे हैं)

हरिसिंह—युवराज ! आज मेवाड़ की प्रजा अपने वीर युवराज को बधाई दे रही है।

चंड—ऐसा मैंने क्या किया है, मैंने तो उल्टा उन्हें मुसीबत का शिकार बनाया है, भाई हरिसिंह मुझे आज राघव का वह कथन याद आता है जो उसने मुझे एकलिङ्गनाथ के मन्दिर में आन लेते समय कहा था।

हरिसिंह—युवराज, वह एक स्वप्न था। परन्तु आज आपने मेवाड़ को रणमल के खूनी हाथ से बचा कर प्रजा का उपकार किया है। राणा मोकल सी को जीवन दान देकर मातृ भूमि का सौभाग्य कायम रक्खा है। इसके लिये जनता आपकी चिर कृतज्ञ रहेगी।

चंड—अच्छा! जनता जनार्दन, नमस्कार लो अपने तुच्छ सेवक का, माता मेवाड आज्ञा दो इस दास को जाने की।

(चलना चाहता है)

हरिसिंह—महाराज, इस समय! जरा रुकिए, केवल एक रात ठहरिये। महारानी की आँखों में रणमल की मृत देह नाच रही है—शोक का उबाल ठण्डा पड़ा कि वे आपको बुलाएँगी— वे स्वयं आपको मनाने आयेंगी।

चंड—मैं वर्तमान वादी हूं, भविष्य का मुझे विश्वास ही नहीं। जो मुझे बुला कर भी ठुकरा दे, उसके दुबारा बुलाने में क्या विश्वास हो सकता है? (चल देते हैं)

हरिसिंह—इस अन्धकार में कहाँ जाइयेगा?

चंड—मेरे लिये क्या रात और क्या दिन दोनों अन्धेरे हैं हरिसिंह।

हरिसिंह—आखिर ये कष्ट क्यों और किसके लिये?

चण्ड—"केवल एक आन के लिये"।

(प्रस्थान हरिसिंह पीछे से)

हरिसिंह—महाराज—महाराज—कुमार—कुमार, युवराज—युवराज! ओ मेवाड़ के सूर्य एक बात तो सुन......

पटाक्षेप

— ———

सत्याग्रही आर्य बालक

पात्र परिचय

पुरुष

नृसिंह	—	भगवान् का एक अवतार।
हिरण्यकश्यप	—	एक नास्तिक राजा
प्रह्लाद	—	हिरण्यकश्यप का पुत्र भगवान का सच्चा भक्त
मन्त्री	—	हिरण्यकश्यप का प्रधान (सचिव)
गुरु	—	शुक्राचार्य

प्रह्लाद के सहपाठी, सेवक इत्यादि

स्त्री

जयन्तिका	—	प्रह्लाद की गुरु, कुम्हार की पत्नि

स्थान—मथुरा

समय—सतयुग का मध्यकाल

कथाप्रसंग

महाराज हिरण्यकश्यप भगवद्विद्रोही थे। उनके राज्य में वेही ईश्वर माने जाते थे। उनका पुत्र प्रह्लाद जयन्तिका के उपदेश पर आस्तिक बन जाता है। भगवद् भक्ति का प्रचार करता है। पिता पुत्र में गहरी ठन जाती है। प्रह्लाद को मौत के घाट उतारने के अनेक प्रयत्न किये जाते हैं। किन्तु प्रह्लाद भगवान् के भरोसे अपनी सत्य प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है। अन्त में प्रह्लाद का सत्याग्रह सफल होता है। भगवान भक्त की रक्षा करने को हिरण्यकश्यप का वध करते हैं। संसार में आस्तिकता का प्रचार होता है। इस नाटक में यही बतलाया गया है। भारत के बालक अनादि काल से सत्याग्रही होते आये हैं, प्रह्लाद का चरित्र इसका साक्ष्य है।

———

सत्याग्रही आर्य बालक

दृश्य पहिला

स्थान—कुम्हार के घर का एक भाग

(कुम्हारी अपने बर्तन पकाने के स्थान के पास खड़ी हुई भगवान से विनय कर रही है)

तुम सम को दया की खानि,
तव नहीं समुझ परै,
अनल स्रवत वारिधारा, वारि सुलग परे।
आँधरो पुनि शैल लाँघे वधिर सुनत, सरै।
अमिय विष विष अमिय करै।
मेरु राई, राई मेरु अघट सुघट करै।

जयन्तिका—कृपालो ! भक्त वत्सल; दीनबन्धो ! आपको सब कुछ सहल है। आप अन्तर्यामी हैं, घट-घट की जानते हैं—आप से किस तरह हृदय की बात छुपाई जा सकती है ! नाथ, मेरे अन जाने इस अग्नि कुण्ड में बिल्ली के बच्चे रह गये हैं। क्या इस समय आप उनकी रक्षा कर अपनी अनन्त शक्ति का परिचय देंगे ?

(प्रल्हाद का कुछ बालकों के साथ प्रवेश)

१ बालक—राजकुमार, आज इस अग्नि समूह में कच्चे बर्तनों के साथ कुछ बिल्ली के बच्चे रह गये हैं।

२ बालक—तब तो भाई वे किसी तरह नहीं बच सकते !

३ बालक—निःसन्देह यदि ऐसा है तो इस कुम्हारी का अपराध है।

प्रह्लाद—क्योंरी, क्या यह बात सच है ?

जयन्तिका—(हाथ जोड़कर) राजकुमार, बात तो सच ही है, परन्तु...... ..

प्रह्लाद—परन्तु क्या, एक तो अपराध करना और फिर ऊपर से उसे छुपाने की तरकीब ढूँढ कर लोगों की आँखों में धूल झोंकना।

जयन्तिका—कुमार ! परन्तु मुझे विश्वास है जिसने उन्हें जन्म दिया था वही दयालु उनकी आग में भी रक्षाकरेगा ! वह बड़ा दयालू है।

प्रह्लाद—वह कौन ?

जयन्तिका—राम।

प्रह्लाद—ये दूसरा अपराध है। जब तू जानती है कि महाराज इस नाम से चिढ़ते हैं तब भी तुझे इस नाम में और इस राम में इतना विश्वास और इतनी भक्ति है !

जयन्तिका—राजकुमार, नाराज न होइये—राम में विश्वास रखने वालों को कभी धोखा नहीं हुआ है।

प्रह्लाद—तो क्या इस इतनी प्रचण्ड अग्नि से राम उन बच्चों को बचा लेंगे ?

जयन्तिका—अवश्य ।

प्रह्लाद—अच्छा तुम इसे कब खोलोगी ?

जयन्तिका—कल इसी समय ।

प्रह्लाद—अच्छा तो कल हम भी आवेंगे। हमारे सामने ही खोलना।

जयन्तिका—जो आज्ञा कुमार ।

(प्रह्लाद का मण्डली के साथ जाना)

दृश्य दूसरा

(हिरण्यकश्यप का मन्त्री के साथ प्रवेश)

हिरण्य०—प्रह्लाद के रहन-सहन में मुझे ही फर्क मालुम पड़ता है या आपको भी ?

प्रधान—आजकल प्रह्लाद पर जयंतिका कुम्हारी का प्रभाव पड़ा हुआ है ?

हिरण्य०—सो किस तरह ?

प्रधान—उसके बर्तनों के साथ २ एक बार बिल्ली के बच्चे अग्नि कुण्ड में रह गये। इस बात को प्रह्लाद भी जानते थे। उन्होंने जयन्तिका से पूछा ये बच्चे कैसे बचेंगे ? इस पर जयन्तिका ने उत्तर दिया कि इन्हें राम बचायेंगे।

हिरण्य०—फिर ?

प्रधान—फिर तीसरे दिन जब बर्तन खोले गये तब बच्चे एक घड़े में खेल रहे थे ! कुछ चमत्कार था कि घड़ों तक आग पहुँचने ही नहीं पाई थी। बस उसीं दिन से प्रह्लाद का राम में दृढ़ विश्वास है और दिन पर दिन उसका झुकाव राम की ही तरफ है।

हिरण्य०—इस आदत को तो यदि आरम्भ में न रोका गया तो इसका परिणाम भयंकर होगा।

प्रधान—मुझे तो जब से पता चला है मैं उसे साम, दाम, दण्ड, भेद सभी प्रकार से राह पर लाने की चेष्टा कर रहा हूँ, किन्तु उस पर कुछ विपरीत ही होता जा रहा है।

हिरण्य०—यदि यह बात है तो मेरी आज्ञा है उसे कठोर से कठोर और बड़े से बड़ा दण्ड दिया जाय तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। और देखो यदि वह किसी तरह अपनी हठ से न डिगे तो उसे प्राण दण्ड तक दे देने में मुझे खेद नहीं होगा। यदि उसकी इस हठ का अन्त नहीं होता तो पर्वत से गिरा कर, पानी में डुबो कर, अग्नी में जला कर, विषपान करा कर, जिस तरह संभव हो उसका अन्त कर दो, मेरी आज्ञा है।

प्रधान—जैसी आज्ञा महाराज !

(प्रस्थान)

दृश्य तीसरा

स्थान—पाठशाला

(बालक बैठे हैं प्रल्हाद उन्हें उपदेश दे रहे हैं)

प्रह्लाद—भाइयों ! जिस नाम में वह शक्ति है कि जो होनी को अनहोनी और अनहोनी को होनी करदे भला उस नाम को भुलाना मनुष्य की कितनी बड़ी भूल है। क्या तुम जानते हो मनुष्य शरीर कितनी मुश्किल से प्राप्त होता है ? भला चौरासी लाख योनियों में भटक चुकने पर उसे मानव शरीर प्राप्त होता है। उसे पाकर भी यदि राम को भुला दिया जाय तो इससे बढ़ कर और मन्द भागीपन क्या होगा ? इसलिये डरो मत और दिल खोल कर भगवद् भक्ति का प्रचार करो। पिता जी की शक्ति भगवान् की शक्ति के सामने कुछ नहीं है।

बालक—परन्तु आपके पिता तो राजा हैं न, वे हमको जो चाहें दण्ड दे सकते हैं।

प्रह्लाद—वे राजा अवश्य हैं किन्तु वे दण्ड नहीं दे सकते क्योंकि बिना भगवान् की कृपा के पवन पत्ता नहीं हिला सकती, मेघ पानी नहीं बरसा सकते, अग्नि जला नहीं सकती। देखते नहीं उस दिन प्रचण्ड अग्नि समूह में पड़े हुए बिल्ली के बच्चे किस तरह बच गये थे।

जो मुसीबतें आवें उन्हें हंस कर गले लगाओ और धीरज के साथ भगवान की भक्ति का प्रचार करो परिणाम तुम्हारे अनुकूल होगा मेरा ऐसा विश्वास है।

२ बालक—परन्तु गुरूजी भी तो उन्हीं की इच्छा को बड़ो समझते हैं। वे भी तो हमें राम का नाम नहीं लेने देते। भैया प्रह्लाद हम पाठशाला में रह कर तो भगवान का नाम नहीं ले सकते।

३ बालक—भैया प्रह्लाद कल तक तो हमने यही पढ़ा है कि राजा ही भगवान् है।

प्रह्लाद—यह भी ठीक है कि राजा भगवान है। परन्तु वह राजा भगवान है जिसमें एक सच्चे राजा के सद्गुण मौजूद हों—दयालु हो, प्रजा पालक हो, भागवद्भक्त हो, दानी और गौ ब्राह्मण की रक्षा करने वाला हो।

४—बालक—तो क्या हमारे महाराज भगवान् नहीं हैं ?

प्रह्लाद—अवश्य, किन्तु हमके कहने से ही काम नहीं चलता, हम भावना में रंग जाने से पता चलता है कि हम भी

प्रह्लाद—तो आओ हम सब एक बार प्रेम से भगवान् को पुकारें उसे हमारी दुःख भरी कहानी सुनावें —

भगवान् तुम्हारे क्या २ गुण हम गावें।
गुणगण का पार अपार न ऋषि जन पावें॥
रूखे सूखे भोजन भक्तों के खावें।
छोड़े मिष्ठान्न अनेक भक्ति बिन लावें॥
भक्तों की तनिक पुकार तुम्हें पिघलाती।
लख उनका दुख भर लेते प्रभु तुम छाती॥
जब तन्मयता से भक्त तुम्हें है ध्याते।
प्रभु छोड़ रमा वैकुण्ठ नभ पद आते॥

(गुरू का प्रवेश)

गुरू—छात्रों यह क्या गुल गपाड़ा है। यह विद्यालय है या भिखमङ्गों की टोली का विश्रामस्थल? क्योंरे पाखंडी प्रह्लाद अब तक तो तू अपने आप ही राजद्रोही था। अब यह विष तूने दूसरे बालकों तक भी फैलाना आरम्भ कर दिया है न, नहीं मानेगा विद्रोही बालक (कान पकड़ता है)

प्रह्लाद—(विनय पूर्वक) गुरुवर! राजद्रोह दोनों कानों पर हाथ रखता है) राम राम आ.........

गुरू—फिर वही बात।

प्रह्लाद—क्या गुरू जी मैं तो समझा नहीं।

गुरू—अभी क्या नाम लिया तूने?

प्रह्लाद—राम

गुरू—चुप, तू निकल दुष्ट मेरी पाठशाला से, मैं नहीं चाहता एक मछली से सारा तालाब गंदा हो।

प्रह्लाद—गुरूजी! राजद्रोह को मैं पाप समझता हूँ। मैं महाराज की सत्ता को शिर झुकाता हूँ, किन्तु इस संसार का राजाधिराज जो परमात्मा है, उसे कैसे भुलाया जा सकता है। महाराज तो उसी के अंश को लेकर उसके प्रतिनिधि का काम करने वाले हैं।

गुरु—यह थोथा उपदेश मैं नहीं सुनना चाहता, बंद कर अपना ज्ञान पिटारा।

प्रह्लाद—तब मुझे क्या आज्ञा?

गुरू—चला जा पाठशाला से गुरूद्रोही बालक!

प्रह्लाद—गुरू ऐसा न कहिये! भगवान आपकी इच्छा, आप जो करते है अच्छा है। (सहपाठियों से) भाइयों! एक बार प्रेम से कहो भगवान की जय।

सब—(खडे होकर) भगवान की जय। भक्त प्रह्लाद की जय।

गुरू—अरे यह क्या, तूने तो सारी पाठशाला को अपने ढांचे में ढाल लिया। प्रह्लाद चलो मैं तुम्हें महाराज के सामने ले चलता हूँ, यह तो बहुत बड़ा अपराध है। तुम स्वयं द्रोही हो इतना ही नहीं तुमने तो इन सब लोगों को भी विद्रोह का पाठ पढ़ा दिया है।

(गुरु प्रहलाद की बांह पकड कर जाते हैं, दूसरे लड़के प्रहलाद पर फूल उछाल कर जयघोष करते हुए पीछे २ निकल जाते हैं)

दृश्य चौथा

स्थान—जेलखाना

(प्रहलाद हाथ जोड़े खड़े हैं।)

प्रह्लाद— यह देह बनी आनी जानी,
दुनिया की कैसी नादानी।
मैं कौन कहां से आया हूँ,
भूला हूँ या भरमाया हूँ।
यह कैसी मेरी मनमानी॥
मैं था, हूँ और रहूँगा अब,
यह देह न होगी तो भी तब।
फिर कौन मरा या कौन जिया,
यह गाथा क्या, किसने जानी?

क्रूरता, कठोरता, मुसीबतों, आफतों, तुम पिशाच हो तब भी मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ, दुःखी मनुष्य का तुम्हीं एक मात्र सहारा बनती हो। आओ, आओ! इकट्ठी हो कर आओ! किन्तु तुम्हारा जोर केवल इस शरीर पर ही चल सकता है. आत्मा तो तुम्हारी पहुँच से दूर है।

आ ! आ ! ओ मेरी अन्तिम परीक्षा की घडी जल्दी आ, अब क्यों दूर हटती है ? माँ जयन्तिका तुम्हारे पढाये हुए पाठ की आज आखिरी परीक्षा है। देखो सफलता मिलती है कि नहीं। (सोचकर) प्रह्लाद क्या कहता है, इतनी कमज़ोरी, कभी नहीं, अरे जिस दिन ऊँचे पहाड़ से निर्मम बन कर जल्लादों ने ढकेला, जिस दिन अग्नि की लपलपाती ज्वालाओं को आलिंगन कराया, सागर की मुँह फाडने वाली लहरों पर जिस दिन बे रहमी से फेंका गया, मस्त हाथी की क्रीडा पुत्तलिका बना कर भी चैन न पाने पर शेर के पिंजडे में डाले जाने पर भी जब बाल बांका न हो सका तब अब वह रक्षक सो थोड़े ही जायगा। आने दो पिताजी आते हैं तो क्या हुआ उनमें भी तो मेरा राम ही है।

हिरण्यकश्यप—(प्रवेश) प्रह्लाद ! अब भी नहीं मानेगा ?

प्रह्लाद—(प्रणाम करके) पिताजी, मैं तो समझता हूँ मैंने कभी आज्ञा नही लांघी ? नारायण ! नारायण !!

हिरण्य० –फिर वही गुस्ताखी।

प्रह्लाद—गुस्ताखी नहीं, मुझे आपके बल में भी पिताजी भगवान् ही दिखलाई पड़ते हैं।

हिरण्य०—अच्छा तू मुझे उसका नाम बतलादे जिसने तुझे यह कुपाठ पढाया है—मैं तुझे छोड़ दूँगा।

प्रह्लाद—पिताजी, यह असंभव है, मैं खुद ही अपराधी हूँ दण्ड दीजिये।

हिरण्य०—(क्रोध से लाल होकर) सैनिक, बाँध दो इसे उस गरम स्तम्भ के और फिर देखता हूँ इसके भगवान इसे मुझसे कैसे बचाते हैं देखें ?

(सैनिक शिर झुका कर प्रह्लाद को जेल से निकाल कर एक पास वाले गरम खम्बे के बाँधता है। हिरण्यकश्यप खड्ग खींचकर)

प्रह्लाद, अब यह तेरा आखरी वक्त है—बोल! मान कहना।

प्रह्लाद—पिताजी, आपमें, इस खड्ग की पैनी धार में, इस खम्बे में मुझे तो भगवान ही भगवान दिखलाई पड़ते हैं मानो चारों तरफ से भगवान अनेक रूप धर कर मुझे गोद में लेना चाहते हैं। भला ऐसे अवसर को छोड़ कर मैं कैसे फिसल जाऊँ।

हिरण्य०—(क्रोध में) दुष्ट बालक ! तो ले (वार करता है।) खम्बा फट कर भगवान नृसिंह के दर्शन होते हैं। हिरण्यकश्यप घबरा कर मूर्छित हो जाता है। भगवान नृसिंह बालक प्रह्लाद को गोद में लेकर हिरण्यकश्यप के वपु पर नाचते हैं।

पटाक्षेप

रानी सारन्धा

या

बुन्देल खंड की बाघनी

पात्र परिचय

पुरुष

अनिरुद्ध	—	टेकड़ी के महाराज
चम्पतराय	—	ओरछा नरेश
औरंगजेब	—	दिल्ली का स्वामी
वली बहादुर	—	दारा का सेनापति
सैनिक	—	बुन्देले वीर और मुगल सिपाही

स्त्री

सारन्धा	—	टेकड़ी की राज कुमारी चम्पत राय की पत्नी
शीतला	—	टेकड़ी की महारानी, सारन्धा की भाभी ।

स्थान—बुन्देलखण्ड

समय—१७ वीं शताब्दी

कथा प्रसंग

जातीय गौरव के लिये किस देश ने और खास कर उसकी रमणियों ने कैसे २ बलिदान किये हैं ? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर यह नाटक देगा। इसमें सति सारन्धा का स्वातन्त्र्य प्रेम, त्याग, बलिदान और आत्म गौरव कितना ऊँचा था यही बतलाया गया है बुन्देलखण्ड प्रांत वीर-बलिदानों की वैसी ही पवित्र वेदी है जैसी राजस्थान में चित्तौड़ गढ़ी ! आज भारत का नाम किसी प्रकार संसार के इतिहास में सुरक्षित रहा है तो केवल चित्तौड़ की और बुन्देल खण्ड की त्याग मूर्तियों के अमर यश के बल पर ही। सुख की कोमल शय्या त्याग कर काटों और पत्थरों के के सहारे पड़ कर मूक प्राण त्याग ही उनका तपोमय आदर्श था। सारन्धा का यही आदर्श इस नाटक में चित्रित है।

यह सति टेकड़ी गढ़ की पुत्री और ओरछे की राजरानी महाराज चम्पत राय की धर्म दारा थी। चम्पत राय का आदर्श इसी देवी की वीरता और उदारता का फल है। भारतीय बालाओं को सारन्धा सदैव आदर्श मार्ग का संदेश सुनाती रहेगी। उसकी मृत्यु ही उसका जीवन है—और वह ऐसा जीवन है जिस पर मृत्यु का असर नहीं है।

रानी सारंधा

या

बुन्देल खण्ड की बाघनी

दृश्य पहिला

स्थान—टेकडी का राजमहल

(सारन्धा और उसकी भाभी शीतला

की आपसी वार्तालाप)

सारंधा—भाभी! संसार में जातीय-गौरव मुख्य वस्तु है। अनेक इसकी रक्षा के लिये बरबाद हो गये। संसार का इतिहास साक्षी है जितने रक्तपात, राज्य-ध्वन्स और उथल-पुथल हुये हैं दुनियां के परदे पर उनमें अधिकांश उत्पातों का कारण जातीय-गौरव ही हुआ है। इसी जातीय गौरव के लिए लोगों ने सुख की कोमल-शय्या को त्याग कर कांटेदार झाड़ियों को अपना निवास बनाया है। ये सब कुछ जानते हुए भी तुम भैया को क्यों रोकती हो स्वतन्त्रता की वेदी पर मर मिटने से?

शीतला—यह आपने सब कुछ ठीक कहा, परन्तु न जाने क्यों मुझे तो उनके लिये पद पद पर आशंका दीख रही है मैं चाहती हूँ उनकी कोमल बाँह का सिराहना न छूटे—हमें यह राज्य और विलासी महल नहीं चाहिये, हम तो अपना जीवन झोंपडियों में बिता लेंगे किन्तु हो शान्ती और चैन। मुझे कभी यह खटका तो न होगा कि न जाने किस घडी मेरी मांग का सिन्दूर पुंछ जाय। सच्ची बाई जी, मैं इस डर से एक क्षण चैन नहीं ले सकती ! मेरा राज्य, मेरा राजा मेरा वैभव, मेरा विलास, मेरा जीवन जो कुछ समझिये एक मात्र वे ही हैं।

सारन्धा—भाभी, तुम पगली हो। तुम्हारा यह आँसू गिराना और रात-दिन प्रेम के स्वप्न देखना भूल है। एक परतन्त्र जाति के भाग्य में तो प्रेम की क्रीड़ाएँ बदी ही नहीं होती यह एक अकाट्य सिद्धान्त है।

(इसी समय कमरे का द्वार खुला और
एक वीर पुरुष भीतर आगया)

शीतला—(उठकर) प्रियतम ! आज तो बहुत थके माँदे मालुम पडते हो। अब तक कहाँ रहे ? क्या तुमको मेरी इस दयनीय दशा पर तरस नहीं आता। (अपनी साडी के छोर से मुँह की धूल झाड़ कर) आओ, आओ, मेरे

सारन्धा—(क्रोध से कांपती हुई अपने भाव को दबा कर) भैया ! तुम्हारे कपडे कैसे भीग गये ?

अनिरुद्ध—मैं नदी पार करके आया हूँ बहन !

सारन्धा—हथियार कहां गए ?

अनिरुद्ध—छिन गये ।

सारन्धा—और सेना ?

अनिरुद्ध—वह शत्रुओं की क्रोधाग्नि में स्वाहा हो गई ।

शीतला—ईश्वर ने ही कुशल की । बैठिये, जरा शान्त हूजिये ।

सारन्धा—(अपने भाई की ओर देख कर) सेना बरबाद हो गई और तुम यहां भाग कर चले आये । मैं क्या देख रही हूँ भैया । जिस कुल की आन के लिये लाखों वीरों ने हँसते हुए अपने सिर चढा दिये—उसी को आज तुमनें पीठ दिखा कर खोदिया । वाह रे पौरुष! क्या इसी को वीरता कहते हैं ?

अनिरुद्ध—(नीचा सिर करके चुप होता है)

शीतला—(बल खाती हुई आंखें लाल करके) मर्यादा इतनी प्यारी है ?

सारन्धा—हाँ ।

शीतला—अपना पति होता तो छाती में छिपा लेती ।

सारन्धा—ना, छाती में कटार घुसेड देती ।

शीतला—झोली में छिपाती फिरोगी, क्या रखा है इन कोरे उपदेशों में, मेरी बात गांठ बाँध रखो ।

सारन्धा—जिस दिन ऐसा होगा, मैं भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊँगी।

अनिरुद्ध—बहन कल के सूर्य में, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, शत्रु को परास्त कर दूँगा।

सारन्धा—धन्य, भैया धन्य !

पटाक्षेप।

दृश्य दूसरा

स्थान—चम्पतराय का महल और बगीचा

(चम्पतराय और सारन्धा की बातचीत)

चम्पत—(प्रवेश) सारन !

सारन—नाथ !

चम्पत—दिल्ली से यह फरमान आया है ?

सारन—क्या ?

चम्पत—बादशाह नौ लाख की जागीर दे रहे हैं।

सारन—लात मार दीजिए इस जागीर को। हमें जङ्गलों २ भटक लेना गवारा है किन्तु गुलाम रह कर जीना नही। यह जागीर नही है नाथ, पुरुपखाओं की अर्जित कीर्ति के लिये कलङ्क है।

चम्पत—यह तो मैं भी जानता हूँ किन्तु उस दिन वाली घटना और प्रतिज्ञा मुझे वाध्य करती है कि मैं एक वादशाह का हुक्म मान ही लूँ।

सारन—यह आपकी मरज़ी, परन्तु हार मान कर नहीं।

चम्पत—बेशक, यह तुम्हारा कहना सत्य है। इस वक्त तो मैं वीर प्रतिज्ञा के अनुसार शाही कहना मान रहा हूँ। हार मान कर नहीं।

सारन—नाथ, फिर भी मैं यही कहूँगी सुख और विलास वीर के लिये विषैला कीड़ा है। आप इस ओर न देखिये (पांव छूती है)

दृश्य तीसरा

स्थान—टेकडी गढ का एक भाग

(अनिरुद्ध सारन्धा का पत्र पढ रहा है)

अनिरुद्ध—(पत्र खोल कर पढता हुआ प्रवेश)

"भैया! दुर्दैव ने मुझे धोखा दिया। मैं कहां तो ओरछे के राज्य की स्वतन्त्र महारानी और कहां आज दिल्ली के बादशाह के सेवक की स्त्री हूँ। वे यहाँ विलास में पड गये हैं। मुगलानियों के विशैले बाष्पकण उन्हें अपने कर्तव्य की ओर से विमूढ कर चुके हैं। क्या तुम इस कष्ट को किसी तरह दूर कर सकोगे, मैं तुम्हारी अत्यन्त उपकृत हूँगी ? यह सब कुछ अनिष्ट उनकी एक वीर प्रतिज्ञा के कारण हो गया है अन्यथा मैं ऐसा कभी न होने देती। भैया मेरी रक्षा करो।

आपकी दुःखी बहन – सारन

(खिन्न और उद्विग्न भाव से घूमता हुआ अनिरुद्ध अपनी पत्नी को पुकारता है।)

शीतला, शीतला

शीतला—(प्रवेश करके) नाथ !

अनिरु०—सारन का पत्र है (देता है)

शीतला—(पत्र लेकर थोड़ी देर बाद) अरे, यह क्यों ? वे दिल्ली चले गये !

अनिरुद्ध—बड़ी भारी भूल की है यह चम्पत ने।

शीतला—(हाथ जोड़कर) भगवान रक्षा करें, नाथ वहाँ उन लोगों का जाना शुभ नहीं।

अनिरुद्ध—अच्छा चलो देखूँ कोई उपाय सोचता हूँ, पहिले चम्पत को ही पत्र लिखता हूँ-देखूँ क्या असर लेते हैं वे मेरा। (प्रस्थान)

दृश्य चौथा

स्थान—दिल्ली के शाही महल का एक भाग

(सारन्धा अकेली बैठी २ कुछ सोचती हुई गुन गुना रही है)

सारन्धा—कुचली हुई भावनाओं का यह जीवन संस्मरण रहा।
उजड़े हुए चमनकी माफिक इस जीवन में कण न रहा।
रही न वीर भावना बाकी, शेष न अब कुछ भ्रमण रहा।
रहा न एक मनका पछतावा वीरोचित क्यों प्रण न रहा।

चम्पत—(प्रवेश) सारन ! इतनी उदास क्यों हो ? मैं देखता हूँ, जब से तुम दिल्ली आई हो—तुम्हारा मुख-चन्द मलिन रहने लगा है।

सारन्न—नहीं नाथ, भला उदासी का तो कोई कारण ही नहीं।

चम्पत—यही तो मैं भी कहता हूँ। पहिले जब मैं रातदिन युद्ध में फँसा रहता था—मुझे क्षण भर आराम न था। तब तो तुम्हारा मुख मण्डल आग के गोले की भांति चमकता रहता था—किन्तु इस समय इस सुख और आमोद की स्थिति में तुम खिन्न हो, तुम्हारे मुख मण्डल पर किसी मानसिक वेदना की मूक झनकार सी स्पष्ट दीखाई देती है—तुम्हारा हृदय-ऐसा लगता है—किसी मानसिक संघर्ष से छिल गया हो और कसकता हो। बोलो छिपाओ नहीं। देखो, यह अनि· रुद्ध का पत्र है, इस पत्र की भाषा कुछ कुछ तुम्हारी मनोवेदना के साथ सहानुभूति दिखा रही है—क्या यह खयाल सच है मेरा ?

सारन—सच है नाथ, बात इतनी ही है। (इच्छा से लेकर) ओरछे में मैं एक राजा की रानी थी और दिल्ली में एक बादशाह के सेवक की स्त्री। यहाँ गुलाम। नाथ, सारन्धा इस दुनियाँ में ईश्वर या नाथ को छोड़ किसी की गुलामी करने वाली नहीं, मुझे स्वतन्त्रता प्यारी है और मैं उसे अपना सर्वस्व न्यौछावर करके भी उसे मोल लेना अच्छा समझती हूँ—किन्तु खेद है मुझे ही आज ये गुलामी की रोटियां खानी पड रही हैं। और इसके कारण है मेरे पतिदेव ही। महाराज, आप

की इस विलास के पीछे अपनी मातृभूमि की याद नहीं। आप उन बुन्देले बच्चों को भूल गये जो रोटियों के लिए तरस रहे हैं—कपड़ों के लिये जगह २ हाथ फैलाते हैं—आपको इन गुलामी की रोटियों को खाकर सुख-निद्रा आसकती है—पर मुझे नहीं। मेरा हृदय तो इतने दूर रहने पर भी उन बच्चों और उनकी माताओं के करुण-क्रन्दन से फटा जाता है।

चम्पत—(सोचकर) सच है, कौन कहता है मैं राजा हूँ। मेरी प्रजा दुःखी है और मैं सुखी हूँ। यह तो राजा का कर्तव्य नहीं। सारन तुमने आज मेरे सोए हुए स्वाभिमान को जगा दिया। (सोच कर) अच्छा प्रिये आज ही बादशाह को मैं यह जागीरनामा लौटा दूँगा और ओरछे के लिये रवाना हो जाऊँगा। (प्रस्थान)

सारन—(उठती हुई प्रसन्न होकर) ईश्वर ! तुमने मेरी सुनली, नाथ के ये वचन कितने प्यारे थे। क्या कहा उन्होंने —आज ही बादशाह को मैं यह जागीरनामा लौटा दूँगा और ओरछे के लिये रवाना हो जाऊँगा।" वाह, मानो आषाढ का प्रथम मेघ बरस कर पृथ्वी के विकल भाव को शान्त कर गया हो—सारन्धा का हृदय भी इस समय वैसा ही हो रहा है। चलूँ-ओरछे की तैयारी करूँ—भगवान् वेतवा का कल कल निनाद कब कानों में पड़ेगा।

दृश्य पांचवां

स्थान—औरङ्गजेब का दरबार

(औरङ्गजेब अपने मन्त्रियों और सेनापतियों से सलाह कर रहे हैं)

औरङ्गजेब—सरदारों, और सिपहसालारों। भाई दारा की फौज का मुकाबला कर जाना कोई मामूली बात नहीं। वालिदे बुजुर्गवार के इस दुनिया से कूच कर जाने के बाद से हम बराबर कोशिश कर रहे हैं लेकिन अभी तक यह मुमकीन नहीं हो सका कि हमारे सिपाही उस फौज पर काबू पा जाँय। मेरा खयाल है, उस बुन्देले बहादुर चम्पतराय को मिलाया जाय अगर किसी तरह भी दारा का मुकाबला कर सकता है तो वही कर सकता है। अब इस वक्त हमें इस बात को भुला देना चाहिये कि चम्पतराय से मदद की इन्तजा करना हमारी तौहीन है।

१ सरदार—इसमें काहे की तौहीन है आलीजाह, वह तो आपका गुलाम है।

२ सरदार—पर वह इस बात पर रजामन्द कब होगा?

औरङ्गजेब—इस वक्त उससे बतौर दोस्त के इन्तजा की जानी मुनासिब होगी। राजपूतों का कौल है वे माँगने पर

दुश्मन की भी मदद करते हैं—मुझे यकीन है—
चम्पतराय हमारी इल्तजा को जरूर मन्जूर करेंगे।
बजा है हुजूर का खयाल।

३ सरदार—बजा है हुजूर का खयाल।

औरङ्गजेब—तो फिर लिखवा दो उन्हें आज ही खरीता, मैं
नमाज के लिये जाता हूँ।

(दरबार बरखास्त, सब का प्रस्थान)

दृश्य छठा

स्थान—लड़ाई के मैदान का एक भाग

(सारन्धा मर्दाने वेष में एक घोड़ा पकड़े हुए
आती है और चम्पत से भेंट होती है)

चम्पत—कौन सारन्धा!

सारन—नाथ!

चम्पत—यह घोड़ा कहां से पाया?

सारन—नाथ! घोड़ा अच्छा था, दारा के सेनापति बलीबहा-
दुर का है। आपने जब उसे गिराया तब मैंने उसके
सिपाही लोगों से इसे जबरदस्ती छीन लिया।

चम्पत—वाह! वीर पत्नी वाह! पर तुम युद्ध में कब चली आई

सारन—नाथ, जब आप पर चारों तरफ से हमला हुआ तो
मैं किले पर से देख रही थी—मुझ से रहा न गया। मैं
तुरन्त सैनिक वेश में निकल आई और तभी से आपके
साथ हूँ—आपने युद्ध में मग्न होने के कारण
नहीं।

चम्पत—साधु ! पतिव्रते साधु ! यह घोड़ा अपने वीर पुत्र को दे दो उपहार में । वीर माता का जीता हुआ घोड़ा वीरपुत्र की ही वस्तु होनी चाहिये ।

सारन—परन्तु प्राणेश्वर, एक भीख माँगती हूँ-दोगे ?

चम्पत—मांगो-दूँगा ।

सारन—अगर इस विजय से प्रसन्न हो कर औरङ्गजेब आपको पुनः जागीर देकर गुलाम बनाये तो आप उसे स्वीकार तो न करोगे ? बस स्वीकार न करोगे यही वचन दो ।

चम्पत—दिया ! प्रिये, मैंने तो उसकी प्रार्थना और शरणागति पर तरस खाकर यह युद्ध किया है वरना मैं उसे खुश करने को ऐसा कभी न करता और न कभी करूँगा ।

सारन—भगवान आपकी टेक रखेंगे मेरे नाथ !

(चरणों पर गिरती है)

पटाक्षेप ।

दृश्य सातवां

स्थान—रानी सारन्धा का निजी उद्यान ।

(सारन्धा का पुत्र आकर अपनी माता को सूचना देता है कि वह घोड़ा वलीवहादुर ने छीन लिया)

पुत्र—(उदास भाव से) माता जी ! आज मैं उस आपके दिये हुए घोड़े पर चढ कर घूमने निकला था, वली बहादुर से भेंट हो गई । उसने मेरा घोड़ा छीन लिया ।

सारन्धा—कुलांगार, घोड़ा छिना कर यहाँ तू क्यों आया है ? अच्छा होता इस घोड़े की टाप के नीचे दब कर मर जाता या फिर बली बहादुर का सर्वनाश कर के उसी घोड़े पर सवार हो कर आता।

(क्रोध में वीरवेष धारण करती है)

पुत्र—तो माता जी, मैं भी चलूँ ?

सारन्धा—नहीं।

(घोड़े पर सवार होकर निकलती है)

दृश्य आठवां

स्थान—बादशाही दरबार

(सारन्धा सैनिक वेश में पहुँच कर ललकार के साथ)

सारन्धा—खां साहब ! बालक के साथ बहादुरी दिखाना वीरों का काम नहीं। आपने उससे घोड़ा छीन कर अच्छा नहीं किया।

बली बहादुर—पर वह घोड़ा तो मेरा ही है। उस पर किसी का हक कैसा ?

सारन्धा—हक, हक साधारण नहीं है, वह तलवार के बल पर खरीदा जा चुका है।

बली बहादुर—जानता हूँ—पर अब घोड़ा नहीं मिल सकता।

सारन्धा—यह बात है, अच्छा तो सम्भालो।

(तलवार म्यान से निकालती है)

औरङ्गजेब—रानी साहबा, आपका यह रवैया अच्छा नहीं। आप शाही दरबार की भी इज्जत नहीं रखतीं। जरा शान्त रहिये—आपको घोड़ा मिल जायगा—लेकिन आपको अब उसकी कीमत देनी होगी।

सारन्धा—मैं उसके लिये अपना सर्वस्व दे सकती हूँ।

औरङ्ग०—क्या जागीर और राज्य भी ?

सारन्धा—हाँ, वह तो तिनके के समान है।

औरङ्ग—क्या एक घोड़े के लिये ?

सारन्धा—नहीं आन के लिये।

औरङ्ग०—वली बहादुर घोड़ा दे दो। और रानी साहबा, आज से आपकी सारी इनाम की जागीर जप्त है। इतना ही नहीं आपने अपने ऊपर एक मुसीबत का पहाड़ उठा लिया है यह समझे रहिये।

सारन्धा—बहुत अच्छा जहाँपनाह। (प्रस्थान)

दृश्य नवां

स्थान—जङ्गल

चम्पतराय—सारन, अब तो पर्वतों का ही आश्रय लेना पडेगा अब चला नहीं जाता—बुखार तेज है और शाही सेना हमारी खोज में है।

सारन—नाथ, चिन्ता नहीं चलिये, अपने ओरछे के जागीरदार इन्द्रमणि के किले में विश्राम लें कुछ दिन।

चम्पतराय—शाही सेना उसे बरबाद कर देगी, अपने हित के
लिये उन्हें बरबाद करना हमें शोभा नहीं देता।
सारन—तब आपकी तबियत तो खराब है। इतना तेज बुखा
—आखिर चलूँ भी तो कहाँ—
(शाही सेना की एक टुकड़ी का आना और
चम्पत तथा सारन को घेर लेना)
सारन्धा—खबरदार! कुत्तों! (तलवार खींच लेती है)
चम्पतराय—(क्रोध में लाल हो कर) सारन मुझे जरा मेरा ख
दो (खड्ग लेकर)
सारन्धा—पर आप कमजोर हैं—मैं ही इनको काफी हूँ।
(इतने में कुछ सिपाही और आजाते हैं)
सेनापति—देखो, चम्पतराय को जिन्दा पकड़ने का हुक्म
बादशाह सलामत का।
सारन्धा—कुत्तो, पाजी, मेरे नाथ को। (तलवार लेकर लपकत
चम्पत०—रानी, ठहरो। मैं ही लड़ता हूँ (लड़ना चहता ।
तलवार नहीं चलती, मूर्छित होकर गिर जाता है)
सारन्धा—(उसका सिर उठाकर अपनी जांघ पर रख लेती है)
नाथ!
चम्पत०—सारन्धा! अब कोई आशा नहीं रही। मुगल
जीवित ही पकड़ना चाहते हैं। देखो अब देर न क
सारन्धा—नाथ, मेरे रहते आपके पास इनमें से एक भी
आ सकता—आप निश्चिन्त रहें पर.......

चम्पत—परन्तु कब तक, सारन्धा तुम अकेली हो, देखो मुझे वेडी पिन्हा कर दिल्ली की सडकों में घूमने का अवसर न दो—भोंक दो तुम्हारी तेज तलवार मेरे हृदय में। जिस स्वाधीनता के लिये मैंने अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया—उसे अब दूसरों के हाथ न बिकने दो।

सारन्धा—नाथ ! जीवन धन (सिर चम्पत के हृदय पर रख कर चीख उठती है)

चम्पत०—मैं बेड़ियाँ पहनने को जीना नहीं चाहता।

सारन्धा—मुझ से यह कैसे होगा नाथ ?

चम्पत०—(सारन को देख कर) तो क्या इसी जीवन पर आन निभाने का गर्व था सारन्धा ?

(इसी अवसर पर कुछ सिपाही चम्पत की तरफ बढ़े)

सारन्धा—जीवनधन, प्राणनाथ, मेरे सुख सौभाग्य जाओ, मैं आती हूँ (चम्पत के हृदय में तलवार भोंकदी)

सैनिक—(आश्चर्य में) रानी साहबा, खुदा गवाह है, हम सब आपके गुलाम हैं—कहिये आपकी क्या मदद करें।

रानी सारन्धा—(शोक पूर्ण शब्दों में) कुछ नहीं, अगर कहीं हमारे पुत्रों में से किसी को जीवित पाना तो हम दोनों की लाशें उन्हें दे देना (कहती हुई अपने कलेजे में तलवार घुसेड कर चम्पत के हृदय पर गिर कर शून्य वातावरण में एक बिजली सी चमका कर सारन्धा अपना नाम अमर कर गई)

पटाक्षेप।